संत सिंगाजी एक अध्ययन

लेखक
रामनारायण उपाध्याय
भूमिका
श्री पं० परशुराम चतुर्वेदी

प्रकाशक
साहित्य-कुटीर, खंडवा (म० प्र०)

मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् के सहयोग से प्रकाशित

प्रथम संस्करण
फरवरी १९६५

मूल्य तीन रुपया
सर्वाधिकार लेखक के आधीन

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३७० रानी मंडी
इलाहाबाद ३

प्रकाशक—
साहित्य-कुटीर
ब्राह्मणपुरी खण्डवा
(म० प्र०)

पूज्य पिता श्री सिद्धनाथजी उपाध्याय
की स्मृति में सादर—

दो शब्द

निमाड़ अंचल के सोलहवीं शताब्दी के संत सिंगाजी पर यह अध्ययन ग्रन्थ प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

इसमें मैंने पहिली बार उनकी प्रामाणिक जीवनी, उनके द्वारा लिखित पांडुलिपियों की मूल निमाड़ी प्रति एवं उनका हिन्दी में अनुवाद, तथा उनके भजन एवं साहित्य पर एक विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक की भूमिका लिखने के लिये मैं संत साहित्य के मर्मज्ञ श्री पं० परशुरामजी चतुर्वेदी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। मैं मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, सिंगा साहित्य के शोधकर्ता श्री सुकुमार जी पगारे, अपने अग्रज श्री पुरुषोत्तमजी उपाध्याय, अनुज श्री शिवनारायण उपाध्याय, चित्रकार श्रीवामन ठाकरे, श्री अमोलकचंदजी एवं श्री इन्द्रचन्द्रजी नारंग के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूँ जिनके स्नेहपूर्ण सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है। यदि इससे संत-साहित्य के अध्ययन के कार्य को कुछ भी बल मिला तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

साहित्य कुटीर
ब्राह्मणपुरी, खंडवा (म० प्र०)

रामनारायण उपाध्याय

भूमिका

संत सिंगाजी (सन् १५१६-५६ ई०) ने निमाड़ नामक भूभाग में रहने वाली गवली (संभवतः ग्वाल) जाति में जन्म ग्रहण किया था। और जहाँ तक पता है उन्होंने कहीं अन्यत्र यात्रा नहीं की प्रत्युत वहीं रहकर अपना चोला भी छोड़ा। निमाड़ शब्द वर्तमान मध्यप्रदेश के प्रायः पश्चिमोत्तर छोर वाले भूखण्ड को सूचित करता है जो उत्तर की ओर विन्ध्य एवं नर्मदा तथा दक्षिण की ओर सतपुड़ा एवं ताप्ती द्वारा न्यूनाधिक सीमित है और जिसके पूर्व में होशंगाबाद एवं बैतूल के जिले पड़ते हैं और पश्चिम में गुजरात का प्रान्त अवस्थित है। इस प्रदेश की एक अपनी बोली है जिसे "निमाड़ी" कहते हैं और इसके निवासियों की अपनी रहन सहन भी है जो उन्हें दूसरों से प्रथक सिद्ध करने लगती है।

सिंगाजी संभवतः अशिक्षित रहे जिस कारण उन पर किसी साहित्य या वाह्य संस्कृति का भी प्रभाव न पड़ सका और न उनके साधारण जीवन में ही कोई परिवर्तन आया। यहाँ के ग्रामीण अंचल में रह कर उन्होंने अपनी साधना पूरी की और यहाँ के समाज में ही बने रह कर अपना जीवन यापन किया। परन्तु निसर्गतः प्रतिभाशाली रहने के कारण उन्होंने अपनी स्वानुभूति के बल पर किसी ऐसे आध्यात्मिक आदर्श का निर्माण किया और कुछ ऐसे उच्चकोटि के उद्गार प्रगट किये जिनसे वे आज तक न केवल अपने यहाँ के महान पुरुषों में अग्रगण्य माने जाते हैं प्रत्युत उन्हें भारत के प्रमुख संतों तक में एक प्रमुख स्थान दिया जाता आया है।

वास्तव में सिंगाजी का आविर्भाव एक ऐसे युग में हुआ था जब हमारी भारतीय चेतना में सर्वत्र उथल पुथल मच रही थी। उस समय

या तो सारी प्रचलित रूढ़ियों तथा उनके अक्षरशः अनुसरण के प्रति सब कहीं उपेक्षा प्रदर्शित की जाने लगी थी अथवा प्रत्येक धार्मिक प्रश्न के ऊपर एक बार फिर से किसी न किसी सुधारवादी दृष्टिकोण के अनुसार विचार करना तथा किसी विशुद्ध सात्विक जीवन को विशेष महत्व देना आवश्यक समझा जाने लगा था। यहाँ तक कि प्रचलित जाति या वर्ण की संकुचित सीमाओं को तोड़ कर किसी व्यापक मानव समाज के आदर्शों को अपनाना तथा उन्हें आध्यात्मिक रूप तक दे डालना उन दिनों अपना स्वाभाविक कर्तव्य सा जान पड़ता था। किन्तु इस प्रकार की प्रवृत्ति सर्व प्रथम कब, कहाँ और किस रूप में उत्पन्न हुई यह बतलाना सरल नहीं है। इस सम्बन्ध में केवल इतना कहा जा सकता है कि यदि यह कुछ सदियों पहले तमिल प्रान्त के शैव नयनारों तथा वैष्णव आलवारों में लक्षित हुई थी तो फिर पीछे उसी प्रकार यह कर्णाटक प्रान्त वाले वसव (बारहवीं शताब्दी) जैसे लिंगायत वीर शैवों तथा पुरन्दर दास (ज० सं० १४८४) जैसे वैष्णव हरिदासों में भी क्रमशः दीख पड़ी थी और यह इसके साथ ही सुदूर उत्कल प्रान्त के क्रमशः संत जयदेव (१२वीं शताब्दी) तथा बलराम दास (ज० सं० १२७२) आदि जैसे पंच सखा भक्तों की रचनाओं के पीछे भी लगभग एक ही प्रकार प्रमुख प्रेरणा बन कर काम करती पायी गयी जो एक साधारण सी बात नहीं थी। यह वस्तुतः बौद्ध सिद्धों, जैन मुनियों नाथ योगियों तथा मुस्लिम सूफियों में भी प्रायः एक समान देखी जा सकती थी। और इसके फलस्वरूप उस समय प्रचलित भारतीय धर्मों की साधना कोई ऐसा रूप ग्रहण करती आ रही थी जिसमें भक्ति, वैराग्य योगाभ्यास, आस्था और आडंबर हीन जीवन का मधुर सामन्जस्य था और वे इसके कारण एक दूसरे से तत्वतः बहुत भिन्न नहीं प्रतीत होते थे और न उनके बीच किसी पारस्परिक संघर्ष का कोई वैसा कारण ही उपस्थित हो सकता था। सिंगाजी के आविर्भाव काल तक इस प्रवृत्ति के चिन्ह महाराष्ट्र प्रान्त के चक्रधर (मृ० सन् १२७४ ई०) जैसे महानुभावों तथा

ज्ञानेश्वर (सन् १२७५-९६ ई०) और नामदेव (सन् १२७०-१३५० ई०) जैसे वारकरियों की रचनाओं में भी स्पष्ट रूप में पाये जा चुके थे और उन्हें सुदूर कश्मीर प्रान्त के लालदेव (ज० सन् १३३५ ई०) एवं वेद ऋषि (सन् १३७७-१४३८ ई०) के उद्गारों में भी देखा जा चुका था। पश्चिमी भारत के वैष्णव भक्त सधना (तेरहवीं शताब्दी) श्वेताम्बर जैनी लौंकाशाह (ज० सन् १४१८ ई०) तथा क्रमशः नाथ पन्थी वेणी (चौदहवीं शताब्दी) जंभनाथ (सन् १४५१-१५३६ ई०) एवं जसनाथ (सन् १४८२-१५०६ ई०) जैसे साधक भी प्रायः इसी के अनुसार प्रचार करते आये थे। और उत्तर प्रदेश के क्रमशः रामानन्द (मृ० सन् १४१० ई०) एवं कबीर (मृ० स० १४४८ ई०), असम प्रान्त के शंकर देव (ज० सन् १४४६ ई०) पंजाब के गुरु नानक देव (१४६६-१५३२ ई०) एवं शेख फरीद (मृ० सन् १५५२ ई०) तथा बंगाल प्रान्त के चण्डीदास (पन्द्रहवीं शताब्दी) एवं चैतन्यदेव (सन् १४८५-१५३३ ई०) के प्रेम तथा भक्ति पूर्ण उपदेशों के भी मूल में यही प्रवृत्ति देखी जा सकती थी। स्वयं मध्य प्रदेश के वैष्णव भक्त सेन (पन्द्रहवीं शताब्दी) तथा दिगम्बर जैनी तारण स्वामी (सन् १४४८-१५१५ ई०) ने भी इसी के अनुकूल मार्गों का प्रदर्शन किया था और इस दूसरे का कार्य क्षेत्र तो निमाड़ से अधिक दूर भी नहीं कहा जा सकता था।

सिंगाजी के गुरु मनरंगीर जी थे जिनकी 'लोरी' नामक रचना प्रसिद्ध है किन्तु जिनके संबंध में विशेष ज्ञात नहीं है। मनरंगीर जी के गुरु ब्रह्मगीर कहे जाते हैं जिनके द्वारा रचित एक पद के केवल कुछ अंश मात्र को ही गाये जाते हुए श्रवण कर सिंगाजी के हृदय में सर्व प्रथम गंभीर आध्यात्मिक भाव जाग्रत हो उठे थे। ब्रह्मगीर जी अनुमानतः कुछ काल के लिये, संत कबीर के सम सामयिक बतलाये जाते हैं और उनकी उपलब्ध बानियों के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी विचार धारा भी संभवतः उसी प्रकार की रही होगी

जैसी उस महान् पुरुष की थी। उनकी प्राप्त पंक्तियों में भी आन्तरिक साधना को उसी प्रकार महत्व दिया गया दीख पड़ता है और संसार के प्रति वैसी ही अनासक्ति प्रकट की गई पाई जाती है तथा उनके शब्दों में भी प्रायः वही चुटीलापन व्यक्त होता दीख पड़ता है जिसके लिये कबीर प्रसिद्ध हैं और इसमें संदेह नहीं कि यदि उनकी वानियाँ कुछ और भी अधिक संख्या में उपलब्ध हो सकें तो हम उन्हें भी न केवल पहुँचे हुए सन्तों में अपितु संत साहित्य के कुशल निर्माताओं तक में गिनने लगेंगे। सिंगाजी के लिये कहा जाता है कि इन्होंने लगभग एक सहस्र वानियों की रचना की होगी जिनमें से कुछ तो अभी तक निमाड़ प्रान्त के निवासियों के यहाँ केवल मौखिक रूप में ही उपलब्ध हैं और शेष का पता लिखित रूप में भी दिया जा सकता है। श्री रामनारायणजी उपाध्याय ने अपनी इस पुस्तक में इस दूसरे वर्ग की रचनाओं में से सात का उल्लेख किया है और इनमें से भी उनकी "वाणावली" की पंक्तियों को उद्धृत करके उनके कतिपय भजन दिये हैं। उपाध्याय जी द्वारा दिये गये उनके संक्षिप्त परिचय से पता चलता है कि वे सभी छोटी छोटी होंगी और उनकी रचना भी संभवतः उसी प्रचलित परम्परा के अनुसार की गई होगी जिसे नाथ पन्थी कवि अपनाते आ रहे थे।

सिंगाजी की "बाणावली" को इस पुस्तक के अन्तर्गत "बाबा सींघा जी की बाणावलै" शीर्षक के नीचे दिया गया है और वह तीन खण्डों वा अंशों में विभाजित जान पड़ती है जिनमें से प्रथम का विषय गुण वा लक्षण जान पड़ता है। इसकी तथा इसके आगे आने वाले दूसरे अंश की छोटी छोटी सी पंक्तियों में भी गहरे अनुभव की बातें कूट कूट कर भरी हुई दीख पड़ती हैं, जो न केवल ठेठ आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित हैं अपितु जिनका संबंध साधारण दैनिक जीवन तक से भी स्पष्ट है। ये सूत्र ऐसे हैं जिनमें किसी स्वानुभूति परक जीवन का निचोड़ सुरक्षित है और जो हमें सजग बनाये रखने में "रामबाण"

जैसा काम कर सकते हैं तथा जिनका महत्व इसी कारण किसी विशालकाय ग्रन्थ से भी कम नहीं कहा जा सकता है। इसके दूसरे अर्थात् "दोस" वा दोष वाले अंश की विशेषता हमें उसके द्वारा अपने आत्मनिरीक्षण की ओर प्रेरित करने में भी लक्षित होती है। इस "वाणावली" के तीसरे अंश "आत्म ध्यान" का अधिकांश "काया" के भीतरी रहस्यों से विशेष संबंध रखता है और इसके अन्त में कुछ उपदेश भी हैं। उपाध्यायजी ने एक ऐसे ही "आत्म ध्यान" शीर्षक वाली किसी प्रथक रचना की भी अन्यत्र चर्चा की है और उसके सोलह पदों का नव पृष्ठों की हस्तलिखित प्रति में होना बतलाया है जो संभवतः इससे भिन्न होगी। सिंगाजी के जो, यहाँ पर कुछ भजन चुनकर दिये गये हैं उनमें से दो एक हमें उस महान पुरुष के आत्म चरित की ओर भी कुछ संकेत करते प्रतीत होते हैं। और इनमें से विशेषकर एक पद की वे पंक्तियाँ हमें बहुत मर्मस्पर्शी जान पड़ती हैं जिनमें उन्होंने बतलाया है कि किस प्रकार मैं जंगलों में रहकर गाय भैंसें चराया करता था और अपने तीसरे "पण" में आ चुका था कि मनरंगिरजी ने सदय हो कर मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखा, मुझे गोद में उठा लिया और उनकी शरण में गद्‌गद् कण्ठ हो गया।

प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत सिंगाजी के पौत्र एवं शिष्य दलुदास के भी कुछ भजन चुनकर संग्रहित कर लिये गए हैं जिनसे पता चलता है इनके प्रति उनकी कितनी अपार श्रद्धा रही तथा किस प्रकार वह इन्हें स्वयं भगवान जैसा ही समझा करते थे परन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण हमें इसका वह अंश जान पड़ता है जिसमें उनके शिष्य खेमदास लिखित "परचरी" दी हुई है। उपाध्याय जी ने उस ग्रन्थ का न केवल मूल मात्र दिया है प्रत्युत उसका एक हिन्दी अनुवाद भी जोड़ दिया है। "परचरी" का रचना काल सं० १७५१ अर्थात् सन् १६६४ ई० जान पड़ता है जिससे पता चलता है कि यह ग्रन्थ उनका देहान्त हो जाने के लगभग सवा सो वर्ष पीछे लिखा गया होगा जब

तक उनके संबंध की अनेक बातों में पौराणिकता का प्रवेश हो चुका होगा। फलतः उनके प्रायः अलौकिक जीवन तथा उनके विशिष्ट चमत्कारों तक को इसमें यथेष्ठ स्थान दिया गया है परन्तु किसी अन्य अधिक ऐतिहासिक परिचय के अभाव में हमें इसका मूल्य प्रत्यक्षतः अधिक मान लेना अनुचित भी नहीं है। हमें यह उसी कोटि की रचना जान पड़ती है जिस कोटि में भक्त अनन्तदास की अनेक परिचइयों तथा मलूकदास विषयक सुथरादास की परचई और संत चरणदास के शिष्य रामरूप कृत "गुरू भक्ति प्रकास" आदि की गणना की जाती है।

संत सिंगाजी के संबंध में अभी तक बहुत कम अनुसंधान किया जा सका है। आज से २६ वर्ष पहले खंडवा के 'सिंगाजी साहित्य शोधक मण्डल' ने इस ओर कुछ कार्य किया था और उसके फलस्वरूप एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की थी परन्तु इस समय कदाचित् वह भी उपलब्ध नहीं है और जिन सज्जनों ने इधर इस विषय को हाथ में लिया है उन्होंने भी बहुधा पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने योग्य छोटे बड़े लेखों को ही लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर दी है। श्री रामनारायण जी उपाध्याय का प्रस्तुत प्रयास उन सभी से कहीं अधिक मूल्यवान है और आशा है इसका यथेष्ट स्वागत होगा।

बलिया यू० पी०

परशुराम चतुर्वेदी

विषय-क्रम

१.	निमाड अंचल की संत परम्परा	१
२.	संत परम्परा में सिंगाजी का स्थान	२६
३.	सिंगाजी की परचरी एक अध्ययन	३५
४.	सिंगाजी की बाणावली	४२
५.	सिंगाजी की परचरी (हिन्दी अनुवाद)	४४
	गाजी की परचरी (मूल निमाड़ी)	६२
७.	बाबा सींघाजी की बाणावलै (मूल निमाड़ी)	१२७
८.	सिंगाजी के भजन	१३२
६.	ब्रह्मगीर के भजन	१३७
१०.	दलुदास के भजन	१३६

निमाड़ अंचल की संत परंपरा

निमाड़ की संस्कृति के निर्माण में संत-साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। निमाड़ी लोक-साहित्य की तरह निमाड़ी-संत-साहित्य भी अत्यन्त ही समृद्ध रहा है।

संत-साहित्य यद्यपि इसका कोई व्यवस्थित लिखित रूप प्राप्त नहीं है, लेकिन लोगों की जबान पर तैरते हुए यह अपने पीछे चार सौ वर्ष की परम्परा लिये हुए है।

इसे सोलहवीं शताब्दी में कबीर के समकालीन सन्त ब्रह्मगीर मनरंगगीर निमाड़ के आराध्य सिंगा और सिंगा के भक्त खेमदास, दलुदास, और रंकदास, जैसे पहुँचे हुए संत-कवियों की वाणी से मुखरित होने का सौभाग्य प्राप्त है।

निमाड़ के लोकजीवन पर इस संत-साहित्य का जितना असर है उतना और किसी का नहीं।

निमाड़ में यह साहित्य निम्न स्वरूपों में प्राप्त है :—

सन्त-साहित्य

- गेय कथानक के रूप में
- झांझ और मृदंग पर गाये जाने योग्य भजनों के रूप में
- छंदबद्ध ओवी के रूप में

इनमें गेय-कथानकों का स्वरूप अत्यन्त ही लम्बा रहा है। ये झांझ और मृदंग के सहारे भजन-मण्डलियों के जरिये पूरी रात चलते रहते हैं। इनमें घंजीदास-रचित 'मोती-लीला' अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। यह करीबन १७५ पदों में सम्पूर्ण है। भाव, भाषा, कथानक, और शैली

की दृष्टि से यह अत्यन्त ही सुन्दर रचना है।[1] भजनों की दृष्टि से संत सिंगा के भजनों की संख्या सबसे अधिक है। यद्यपि उनके द्वारा लिखित भजनों की संख्या ग्यारह सौ बतलाई जाती है लेकिन, इनका स्वरूप मौखिक होने से अभी तक इनमें से लगभग अढ़ाई सौ भजनों का संकलन किया जा सका है।

छंदबद्ध ओवी की दृष्टि से श्री स्वामी शिवानन्दजी ने सम्पूर्ण रामायण को निमाड़ी ओवी में लिखकर, निमाड़ी भाषा की अपूर्व सेवा की है। आपका यह ग्रंथ तथा 'श्रीराम-विनय' नामक एक और ओवी पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है।

अब हम यहाँ क्रम से इन की चर्चा करेंगे।

ब्रह्मगीर, निमाड़ी संत-साहित्य के आद्य-प्रवर्तक रहे हैं। यद्यपि उनकी रचनाओं में निमाड़ी का वैसा स्वरूप नहीं निखरा है जैसा कि

ब्रह्मगीर

सिंगा की रचनाओं में, फिर भी निमाड़ी भाषा में सर्व प्रथम रचना करने का श्रेय इन्हें ही है। आप सिंगा के गुरु के गुरु थे।

सिंगाजी का समय सम्वत् १५७६-१६१६ माना जाता है। चूँकि सिंगा ब्रह्मगीर के द्वितीय शिष्य परम्परा में आते हैं, अतएव इनका समय भी सम्वत् १४५५–१५७५ होना चाहिये।; यही कबीर का काल रहा है।

इनकी रचनाओं पर कबीर का स्पष्ट प्रभाव भी है। जिस एक गीत ने सिंगा के जीवन में आमूल परिवर्तन कर दिया, और एक जमाने के साधारण से गौली को युग-युगांत का महान संत बना दिया, वह गीत भी इन्हीं का लिखा हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी उनकी यह रचना संत-साहित्य में सदा स्मरणीय रहेगी। वह पूरा गीत यूं है—

---

१. लेखक के द्वारा इसकी प्रामाणिक प्रतिलिपि तैयार कर ली गयी है।

समझी लेओ रे मना भाई, अंत नी होय कोई आपणा ।
आप निरंजन निरगुणा, सगुण तट ठाड़ा,
यही रे माया के फंद में, नर आण लुभाणा ॥१॥
भवसागर को पैर के, किस विध पार उतरणा,
नाव बणी खेवट नहीं, अटकी रह्यो रे निदाना ॥२॥
कोट कठिन गढ़ चैढ़णा, नर आण लुभाणा,
घड़ियाल बाजत पेहर का, दूर देश का जाणा ॥३॥
माया के भ्रम नहीं भूलणा, ठगी जासे निदाना,
ब्रह्मगीर कहते भये, पहिचाण ठिकाणा ॥४॥

इनका एक और गीत सुनिये—इस गीत में इन्होंने मनुष्य को इस दुनिया में दो दिन का परदेशी मेहमान बताया है, जिसे अन्त में निर्गुण-धाम जाना है। अतएव उन्होंने कहा है कि जो कुछ ले-दे लोगे वही साथ जावेगा, अन्यथा एक दिन आश्चर्यचकित रह जाओगे जब यात्री अपनी राह लग जावेगा।

उनका कहना है कि—ब्रह्मगीर ने तो ब्रह्म के ध्यान में ब्रह्म को ही देवता माना है। और ब्रह्म ने ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म की ही सेवा की है। कैसी विराट कल्पना है ! पूरा भजन यूं है—

हम परदेशी पावणा, दो दिन का मेजवान ।
आखिर चलना अंत को, निरगुण घर जाणा ॥
नांद से बिन्दु जमाइयाँ, जैसा कुंभ का काचा ।
काचा कुंभ ना रहे, एक दिन होय गा विनाशा ॥
खाणा-पिणा सो आपणा, दिया लिया सो साथ ।
एक दिन अचरज होय गा, उठ लागोगे बाट ॥
ब्रह्मगीर ब्रह्म-ध्यान में, ब्रह्म ही कियो देवा ।
ब्रह्म ब्रह्म मिसरित भयो, करी ब्रह्म की सेवा ॥

मनरंगीर, स्वामी ब्रह्मगीर के शिष्य और सिंगा के गुरु थे। इन्हीं के मुँह से ब्रह्मगीर महाराज का भजन सुनकर सिंगा को वैराग्य हुआ

मनरंगीर था। यद्यपि इनके लिखे भजनों की संख्या अत्यन्त ही कम है, लेकिन जो मिले हैं उनमें एक 'लोरी' बहुत प्रसिद्ध है।

कहते हैं एक बार ये सुक्ता नदी के तट पर ध्यानस्थ बैठे थे। इतने में उधर से एक बच्चे का शव बहता हुआ आया। शव को देखते ही इन्होंने उसे गोदी में उठा लिया, और अत्यन्त स्नेह से निम्न लोरी सुनाने लगे—

जिस समय संत की गोद में बच्चे का शव झूल रहा था, उस समय ऐसा लगता था मानो शून्य में झूला बांधकर, त्रिगुण की डोर से, अत्यन्त ही जतन से मनरंग स्वामी उसे खींच रहे हों।

वे कह रहे थे सप्त धातु का यह पिंजरा बना है जिसमें तीन सौ साठ पट्टे डले हैं, सिर्फ एक कड़ी का जड़ाव है जिस पर यह सारा ठाठ रचा है। बच्चे तू न तो सोता है न जागता है। तू तो बिना ब्याही का पूत है। जिसके संग में, "सोहं-पुरुष" है, वह बाँझ का बच्चा भी झूले झूल रहा है।

अनहद का नाद हो रहा है और अजपा का जाप चल रहा है। जिस तरह तालाब में अष्टकमल दल खिल रहा हो, ऐसे ही बच्चे के शरीर में नये प्राणों का संचार हो रहा है।

कहते हैं लोरी के समाप्त होते ही बच्चा जी उठा था। कैसा अद्भुत दृश्य है, कैसी अपूर्व साधना है!

पूरा भजन यों है—

'सोहं बाळा हालरो[1] नित निरमळो।
निरमळ थारी जोत, सोहं बाळा हालरो ॥१॥
नदी सुक्ता[2] का घाट पर, बाबा घाट पर, बैठ्या ध्यान लगाय।

---

१. लोरी

२. यह स्थान खण्डवा से ६ मील दूर भामगढ़ ग्राम के पास है।

आवत देख्यो पींजरो,[1] बाळा पींजरो, लियो गोद उठाय ॥२॥
सप्त-धातु को पींजरो, बाळा पींजरो, पाख्या तीन सौ साठ ।
एक कड़ी हो जड़ाव की, बाळा जड़ाव की, वा पर रचियो ठाठ ॥३॥
आकाश झूलो बाँधियो, बाळा बाँधियो, लाग्या निरगुण डोर ।
जुगत से झूलो झुलाविया, बाळा झुलाविया, हींचऽ[2] मनरंग मोर ॥४॥
नहीं रे बाळा[3] तू सोवतो, नहीं जागतो, बिन ब्याही को पूत ।
सदा हो 'शिव' जाकी संग में, जाकी संग में, झूलऽ बाँझ को पूत ॥५॥
अनहद घुंघरू बाजिया, बाळा बाजिया, अजपा को मेह ।
अष्टकमल दल खिली रह्यो, जैसा सरवर मेव ॥६॥

निमाड़ी लोक-साहित्य के निर्माण में संत सिंगा का अपूर्व स्थान रहा है। निमाड़ में यदि संत सिंगा नहीं होते तो निमाड़ी भाषा इतनी परिष्कृत नहीं होती, निमाड़ की संस्कृति इतनी सहिष्णु नहीं होती और निमाड़ के जनमन में आध्यात्मिकता की ऐसी अमिट छाप नहीं होती।

सिंगाजी—लोक-जीवन में स्थान एवम् प्रभाव

सिंगा ने निमाड़ को जितना दिया है उतना और किसी ने नहीं। उन्होंने निमाड़ी भाषा में ग्यारह सौ आध्यात्मिक भजनों का निर्माण कर, न सिर्फ निमाड़ी भाषा, वरन् समस्त निमाड़ को गौरवान्वित किया है। आप निमाड़ के किसी भी गाँव में चले जाइये, वहाँ आप सूर और तुलसी के पदों की तरह संत सिंगा के पद प्रचलित पायेंगे। निमाड़ में कोई ऐसा गाँव नहीं मिलेगा जहाँ भजन-मण्डली नहीं हो। और कोई ऐसी भजन-मण्डली नहीं मिलेगी जिसे सिंगा के भजन याद न हों। मानो सिंगा के भजनों के बिना यहाँ का सारा संगीत अधूरा है। सिंगाजी उनके लिये महज एक

१. शरीर
२. हिलोरे देकर
३. आत्मा

संत या कवि नहीं वरन् एक पहुँचे हुए पुरुष और अलौकिक व्यक्ति थे। यही वजह है कि जिससे आज भी यदि किसी का बैल गुम जाता है, या भैंस दूध नहीं देती है तो वे सिंगा की मनौती मानते आये हैं।

अपने इस संत कवि पर यहाँ की जनता की कुछ ऐसी असीम श्रद्धा रही है कि भले ही सूर और तुलसी के नाम पर कोई ग्राम नहीं बसे हों, मेले नहीं लगते हों, लेकिन सिंगा की समाधि पर उनकी निर्वाण-तिथि के अवसर पर निमाड़ का सबसे बड़ा मेला लगता है, और उनकी समाधि के पास जो गाँव बसा है वह "सिंगाजी" के ही नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। किसी भी संत या लोक-कवि के चरणों में जनता की इससे बढ़कर और कौन सी श्रद्धांजलि हो सकती है!

यद्यपि अभी तक उनके साहित्य का कोई व्यवस्थित प्रकाशन नहीं हो सका है, लेकिन खुशी की बात है कि इस दिशा में शोध-कार्य जारी है।

सिंगाजी की परचरी

एक बार अपने दौरे के सिलसिले में मुझे 'सिंगाजी की परचरी' नामक एक महत्वपूर्ण हस्तलिखित पाण्डुलिपि प्राप्त हुई।

यह मोटे देशी कागज पर ४ × ६ की साइज में १४० पृष्ठों में संपूर्ण है।

इसके निर्माण-काल और लेखक के सम्बन्ध में ग्रंथ के अन्त में निम्न-शब्द अंकित है।

"इति सिंगाजी की परचरी सम्पूर्ण भई।

जन परताप खेमजो कही। संमत् १७५१। हाल संमत् १८७६। श्रावण वद १। शुक्रवार तादिन लिखतव्यं। गोवरधनदास ब्राह्मण सम्पूर्ण समाप्त। जथा प्रत्य लिखी मम दोषो न दीयते।" इससे पता चलता है कि संवत् १७५१ में परताप खेमजी ने इसे लिखा और सम्वत् १८७६ में गोवरधनदास ने उसी पर से इसकी प्रतिलिपि तैयार की।

इस तरह मूल प्रति को आज २६१ वर्ष, और प्रतिलिपि को १३३

वर्ष होते हैं। उसकी एक प्रति सिंगाजी के वंशज और सिंगा गादी के महंत श्री मांगीलालजी के पास है। एक प्रति मुझे निमाड़ लोक-साहित्य परिषद के बड़वाह अधिवेशन के अवसर पर भोयन्दा-निवासी, श्री भगवानजी यादव कसरावद्या के पास भी देखने को मिली थी। साथ ही, भाई नेमीचन्दजी जैन ने भी इसकी एक प्रति का जिक्र किया था जो कि काफी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थी। इससे यह स्पष्ट है कि मूल-ग्रंथ एक ही है जिसकी अब कुछ प्रतियाँ ही यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं।

संत सिंगा पर अभी तक प्राप्त यह एकमात्र प्रामाणिक ग्रंथ है।

भाई कृष्णलाल हंस ने इसके लेखक के सम्बन्ध में दलुदास का जिक्र किया है। लेकिन जैसा कि इस पर स्पष्ट लिखा है इसके लेखक श्री खेमदासजी हैं। पुस्तक में अनेकों जगह लेखक की बतौर उनका नाम भी आया है। यथा

'कहे खेम विचार तब, साखी एक कही विचार।'[1]

'कहे खेम सुनो जन लोई, सुरता बकता पद परापत होई।'[2]

'सिंगा स्वामी की परचरी पूरी भई, जन परताप खेम जो कही।'[3]

वैसे "परचरी" का अर्थ "परिचय" या "परचा" दोनों होते हैं, लेकिन जैसा कि ग्रंथ को पढ़ने से पता चलता है, यहाँ उसका अर्थ "परचा" ही है। निमाड़ी में "परचा" शब्द चमत्कार के लिये प्रचलित रहा है। हमारे यहाँ की यह परम्परा रही है कि जब भी कोई व्यक्ति अपनी साधना के बल पर संत, महापुरुष, या अवतार हुए, लोगों ने उनसे कुछ न कुछ चमत्कार चाहे हैं। चाहे राम, कृष्ण हो, चाहे सूर, तुलसी, किसी का भी जीवन इस तरह के चमत्कारों से खाली नहीं है। सो इसमें संत-

परचरी का अर्थ

१, २, ३—"सिंगाजी की परचरी" पाण्डुलिपि पृष्ठ १—४२४—४२८

सिंगा के जीवन से सम्बन्धित कुछ ऐसे ही चमत्कार अंकित हैं। साथ ही, इससे सिंगाजी के जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ता है।

इसके साथ ही कुछ और पाण्डुलिपियाँ भी प्राप्त हुई हैं, यथा—

अन्य पाण्डु-लिपियाँ

१—सिंगाजी का दृढ़ उपदेश, पृष्ठ ६४ (पद २०१)
लेखक के सम्बन्ध में इसके अन्त में लिखा है—
'अब ये कथा सम्पूर्ण भई, सुणो रे साधू सिंगाजी ने कई।'

इससे इसके लेखक "सिंगाजी" ही सिद्ध होते हैं।

२—आठ वार सिंघाजी का पृष्ठ ३ (पद ७)

३—पन्द्रह दिन पृष्ठ ५ (पद १५)

४—बाबा सिंघाजी की बाणावली पृष्ठ ६ (पद २३)

५—आत्म ध्यान पृष्ठ ९ (पद १६)

६—सिंघाजी की नराज पृष्ठ ४ (पद २०)

इनके अलावा दो ग्रंथ हैं—

१—श्री महिमन स्तोत्र

२—श्री मदभागवत महापुराण

लेकिन न तो ये सिंगाजी द्वारा लिखित हैं, और न इनका सिंगा-साहित्य से कोई सम्बन्ध ही है। इसमें महिमन तो मूल संस्कृत में है और उसके अन्त में लिखा है—

'लेखक भास्कर भट्ट पुराणिक, पठणार्थ राजे श्री कालूवाजी, चिरंजीव, लक्ष्मणभाई, वात्सव्य श्री सिंगाजी महाराज।'

भागवत पुराण के अंत में लिखा है—

"संवत् १८७९ प्रवर्तमान्ये, श्री सूर्य उतारायणे, महावदी ३। ता दिन लिखी, जथा प्रत गोबरूभाई शुभ स्थान टिमरनी, पठणार्थ श्री महाराज महंत साहिब भीकादासजी व कालूभाई।"

इससे यह पता चलता है कि यह श्री कालूजी, भीकादास जी व लक्ष्मण भाई के लिये लिखी गई है।

अभी तक प्राप्त सिंगा-साहित्य को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१—सिंगाजी द्वारा लिखित

२—सिंगाजी पर लिखित

अभी तक इनमें से निम्न सामग्री प्राप्त की जा चुकी है :—

(१) सिंगाजी द्वारा लिखित

१—सिंगाजी का दृढ़ उपदेश

२—आठ वार सिंगाजी का

३—पन्द्रह दिन

४—बाबा सिंगाजी की बाणावली

५—आत्म ध्यान

६—सिंगाजी की नराज

७—सैकड़ों मौखिक भजन, जिनकी प्रतिलिपि की जा चुकी है।

(२) सिंगाजी पर लिखित

१—सिंगाजी की परचरी—लेखक : खेमदासजी

२—सिंगाजी की प्रशंसा में लिखित—दलूदासजी के अनेकों भजन।

सिंगाजी साहित्य शोधक मण्डल के निर्णयानुसार संत सिंगाजी का जन्म सम्वत् १५७६ में मिति वैशाख सुदी ११ गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में, ८ बजे दिन को बड़वानी स्टेट (अब मध्यप्रदेश) में खूजरी ग्राम में हुआ। सम्वत् १५८१-८२ में आपके पिता अपना समस्त सामान लेकर, जिसमें ३०० भैंसें भी थीं, निमाड़ के हरसूद नामक गाँव में आकर रहने लगे।

जन्म

सम्वत् १५९८ में सिंगाजी ने भामगढ़ (खण्डवा) के राव साहब के यहाँ एक रुपया माहवार पर चिट्ठी पत्री लाने और ले जाने के काम पर नौकरी कर ली। नौकरी छोड़ने के समय उन्हें तीन रुपये माहवार

मिलता था। इसी बीच मनरंगीर स्वामी का एक भजन सुनकर आपको वैराग्य हो गया और आप नौकरी छोड़कर अपनी आध्यात्मिक साधना में तल्लीन हो गये।

यही आपके भजनों के निर्माण का काल भी है। अन्त में सम्वत् १६१६ में श्रावण वदी ९ के दिन आपने समाधि ले ली। इस तरह आपकी आयु ४० वर्ष ठहरती है।

सिंगाजी के जन्म के सम्बन्ध में तो कोई विवाद नहीं है। लेकिन अभी अभी प्राप्त "सिंगाजी की परचरी" ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा मिला है कि "सवत्स, १६४८ के साल में स्वामी की देह छूटी, मिती सरावण सुदी ९।" शायद उसी आधार पर श्री कृष्णलाल हंस ने भी सिंगा की निधन तिथि १६४८ मानी है। इससे उनकी आयु ६० वर्ष ठहरती है। लेकिन उनके सम्पूर्ण जीवन-वृत्त पर विचार करने से यह बात उचित नहीं जंचती। कारण, अभी तक प्राप्त सामग्री के अनुसार इतना तो स्पष्ट है कि सम्वत् १५७६ में उनका जन्म हुआ।

पांच वर्ष की अवस्था में वे अपने पिता के साथ हरसूद आये और २२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने भामगढ़ के राव साहब के यहाँ एक रुपये माहवार पर नौकरी की। नौकरी छोड़ने के समय उन्हें तीन रुपये मिलते थे। यदि एक रुपया वर्ष भी तरक्की मानी जाये, तो उनके द्वारा तीन वर्ष तक नौकरी करना सिद्ध होता है। इस तरह २५ वर्ष की उम्र में उन्हें वैराग्य हो गया होगा।

उनके समाधिस्थ होने के सम्बन्ध में भी यह प्रसिद्ध है कि एक बार जब जन्म-अष्टमी के दिन उनके गुरु मनरंगीर स्वामी को नींद आने लगी तो उन्होंने सिंगा को बुलाकर कहा कि मैं तो सोता हूँ, तुमने मुझे जन्म के समय जगा देना। जब जन्म का अवसर आया, तो सिंगाजी ने सोचा कि भगवान क्या रोज रोज थोड़े जन्म लेते हैं। फिर मैं गुरु को क्या त्रास दूँ, मैं ही क्यों न आरती कर दूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने आरती कर दी।

लेकिन जब गुरु की नींद खुली, तो वे बहुत नाराज हुए और उन्होंने क्रोध में सिंगाजी से कह दिया कि "जा दुष्ट मुझे मरा मुँह दिखाना।"

सिंगा को यह बात तीर-सी लगी, लेकिन उन्होंने गुरु की बात को वरदान की तरह स्वीकार कर ११ मास बाद, सम्वत् १६१६ की श्रावण सुदी ६ को स्वेच्छा से समाधि ले ली।

कहते हैं मृत्यु के बाद जब मनरंगीर स्वामी उनके घर आये तो रास्ते में सिंगाजी उनसे मिले थे, और इस तरह गुरु ने जो कहा था कि "मरा मुँह दिखाना" सो उन्होंने गुरु के वचनों को पूरा कर दिखाया था। इस घटना से सिंगा के जैसे प्रखर स्वभाव, तेजस्वी स्वरूप, और फक्कड़ तबीयत का पता चलता है, वह ६० वर्ष की अवस्था में उचित नहीं जंचता वरन् एक ४० वर्ष के नौजवान के अनुकूल ही जंचता है। रही परचरी के सम्वत् की बात। सो उसमें यह सम्वत् अलग से ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है। परचरी के कथानक में या अन्य ग्रन्थों में इसका कोई जिक्र नहीं आया है।

अतएव जब तक इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं मिलते तब तक हमें सिंगाजी साहित्य शोधक मण्डल का निर्णय ही उचित जंचता है, और उनकी आयु ४० वर्ष ही सही प्रतीत होती है।

सिंगा की जाति और परिवार के सम्बन्ध में ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि—

जाति और परिवार

"सिंघाजी नाम, जात का गवळी
बजावे पावा, मोहर बंसळी,
गावऽ गीत, घुमावऽ देव
हरी भजन को न जाने भेव ॥३॥
रहे अदमद करे चाकरी
अब नहीं जाणे दुसरी
गऊ, बछेरू, महेकी, अपार,
माता, तात, कुटुम्ब परिवार ॥५॥

अर्थ है—"सिंगाजी जात के गौली थे, वे बहुत अच्छा गीत गाते और बांस की वंशी बजाते थे। बचपन में बहुत ऊधमी थे। देव (बड़वों) को घुमाते और हरि भक्ति का भेद नहीं जानते थे। उनके माता, भाई, और विशाल कुटुम्ब परिवार था तथा घर, गाय बछुओं से समृद्ध था।"

उनके गुरु, पितामह और आराध्य के सम्बन्ध में लिखा है—

"सुमर्‌यो राम कियो संघाती, मनरंग को सिष, जगन्नाथ को नाती।"
॥२६७॥

वे राम के भक्त, मनरंग के शिष्य और जगन्नाथ के नाती थे।

उनके पिता का नाम भीमाजी, और माता का नाम गौरबाई, तथा बड़े भाई का नाम लिम्बाजी था। उनके पत्नी और बच्चे भी थे। उनकी पत्नी अत्यन्त सुशील एवम् राम की भक्त थी। देखिये—

"सींघा स्वामी, जसोदा नारी, बहुभजनीक राम की प्यारी।
निमाड़ खण्ड मां स्वामी भयो, अति लवलीण राम गुण कह्यो।"
॥४३८॥

"निमाड़ खण्ड में सिंगा स्वामी हुए जिन्होंने अत्यन्त ही तन्मय होकर राम की भक्ति की। उनकी पत्नि का नाम जसोदाबाई था, और वे भी भक्त थीं।"

उन्होंने जब समाधि ली, उस समय उनका कच्चा साथ था, याने घर में सम्हालने वाला कोई बड़ा-बूढ़ा नहीं था। उनके चार बच्चे थे जिनका नाम क्रमशः कालू, भोलू, सदु, और दीपा था। देखिये लिखा है—

"नान्हां बाळक नान्हा, सात, रोवे नारी करे कळपात।
कालू, भोलू, चारई सुत, सदु, दिपो नान्हां सुत ॥३१२॥

वेश-भूषा

यद्यपि सिंगाजी का कोई चित्र प्राप्त नहीं है, लेकिन ग्रन्थ में जैसा उनका वर्णन आया है, उसी पर से उनके स्वरूप का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

"लम्बी धोती माथे चादर, पटा पावड़ी लकड़ी हाथ।" (३६४)

एक जगह और लिखा है—

"सिर पर चादर हाथ लाकड़ी, घड़ी दुई लो चरचा करी।" (३३४)

याने वे कमर में लम्बी धोती और सिर पर चादर ओढ़ते थे, तथा पांवों में खड़ाऊँ पहिनते, व हाथ में लकुटी लिये रहते थे।

मैं तो आज भी जब सिंगा का स्मरण करता हूँ तो मेरी आँखों में निमाड़ी शकल में गाँधी और विनोबा घूम जाते हैं। कितना सरल और महान व्यक्तित्व रहा होगा उनका!

उनके प्रभाव के बारे में एक जगह लिखा है—'सिंगा स्वामी पिपल्या वाले, निमाड़ खण्ड जाको अधिकार।' यानी वे पिपल्या वाले सिंगाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं जिनका समस्त निमाड़ पर अधिकार था।

प्रभाव

अन्त में उनके मेले के सम्बन्ध में लिखा है कि उनके समाधिस्थ होने के साल से ही, उनके शिष्य नारायणदास के प्रयत्नों से, शरद् ऋतु में यहाँ मेला लगने लगा है।

मेला

'एक बात बसी सबके चित्त,
स्वामी ठाठ सो कीजे तीय,
कीजे शरत् समय को मेला,
ये ऊ भाखे नारायण चेलो।' (३२२)

उनके समाधिस्थ होने के सम्बन्ध में लिखा है—

समाधि

'नगर मूंदी परगणो, पिपल्यो गाँव।
छोड़ी स्वामी देह, तीनी ठाँव॥'
'पूरब दिशा दीनी समाधु,
तहाँ मिले संत अरु साधू।' (३१८)[1]

---

१. उपरोक्त पदों के साथ दिये गये नंबर, "सिंगाजी की परचरी" नामक मूल पांडुलिपि के पद नंबर हैं।

सिंगाजी के विषय में अनेकों चमत्कार प्रचलित रहे हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—

सिंगाजी के चमत्कार

१—उनकी समाधि पर मनों शक्कर का प्रसाद चढ़ने पर भी चिउंटी नहीं होती।

२—कुंवार के महीने में भी वहाँ पूर्णिमा के दिन कच्ची कैरी देखी जा सकती है।

३—सिंगाजी के नजदीकी सिवरिया गाँव के सिंगा के अनन्य भक्त श्री साधूभाई नामक एक जन्मांध व्यक्ति ने मुझे बताया कि मवेशियाँ चराने के सिलसिले में वे जब भी जंगल में रास्ता भटक गये हैं, तब कोई व्यक्ति आकर उनकी बाँह पकड़कर, मौन रूप से, उन्हें उनके गाँव की राह लगा गया है। और उनका विश्वास है कि वे सिंगाजी ही थे।

सिंगा के अनन्य भक्त श्री दलूदास के एक भजन से उनके सम्बन्ध में निम्न दो चमत्कारों का पता चलता है—

१—उन्होंने झाबुआ देश के बहादरसिंग राजा की डूबती हुई जहाज को उबारा।

२—कुंआरी भैंस का दूध दुहा।

अभी अभी प्राप्त खेमदास-कृत सिंगाजी की परचरी में जिन चमत्कारों का वर्णन है, उन्हें मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१—उनके जीवन-काल से सम्बन्धित घटनाएँ,

२—उनके समाधिस्थ होने के पश्चात् की घटनाएँ।

उनके जीवनकाल से सम्बन्धित निम्न दो घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं—

(१) एक बार कुछ चोर आये और सारी भैंसें चुरा ले गये। गाँव भर में कुहराम मच गया। सब लोग उन्हें ढूँढते फिरे, लेकिन सिंगाजी घर ही बैठे मुस्कराते रहे। इससे माँ उन पर बहुत नाराज हुई। तीसरे दिन उन्होंने कहा 'माँ! तू क्यों फिक्र करती है। हमारी भैंसों का तो भगवान रखवाला है। तू बर्तन लगा और पाड़ा-पाड़ी छोड़, वे आती

ही होंगी।' इस पर भी जब माँ को विश्वास नहीं हुआ, तो सिंगाजी स्वयं पाड़ा-पाड़ी छोड़ कर बाहर गये और भैंसों को लेकर वापिस आ गये। उनके इस कार्य पर सारा गाँव आश्चर्यचकित रह गया, और सब उन्हें धन्य धन्य कहने लगे।

(२) एक बार सब लोगों का विचार हुआ कि ओंकारेश्वर चलें। उन्होंने सिंगाजी से भी कहा। यद्यपि सिंगाजी का विश्वास तीर्थ, व्रत, में नहीं था, फिर भी उन्होंने गांव वालों के आग्रह पर कहा अच्छा, तुम चलो मैं भी आता हूँ। गाँव के लोग जब तीन दिन तक पैदल चलकर ओंकारेश्वर पहुँचे, तो बीच नर्मदा में नाव में सिंगाजी को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। फिर वे पूरे पांच दिन तक उनके साथ रहे, और जब आने का समय आया तब भी बोले "अच्छा, तुम चलो मैं अभी आता हूँ।" और अन्तर्ध्यान होकर उनसे पूर्व ही घर आ गये। उनके साथियों ने गाँव में आने पर जब यह सुना कि सिंगाजी तो पूरे दस दिन से घर ही पर थे, कहीं एक दिन को भी बाहर नहीं गये थे, तो वे और भी अधिक आश्चर्यचकित हुए, और उन्हें पहुँचे पुरुष मानने लगे।

उनके समाधिस्थ होने के बाद की निम्न तीन घटनाएँ प्रसिद्ध हैं :—

(१) समाधिस्थ होने के तीन माह बाद उन्होंने एक ब्राह्मण को दर्शन दिये। सूर्योदय के समय राह में वे उससे मिले, चर्चा की और गाँव के कुशल-समाचार पूछे। उनके सिर पर चादर और हाथ में लकड़ी थी। ब्राह्मण तो सुध-बुध भूल गया, और उन्हें प्रणाम करने का भी उसे ख्याल नहीं रहा। इसी बीच वे अन्तर्ध्यान हो गये। उसने जब यह बात गाँव में आकर कही तो लोगों ने सहसा उस पर विश्वास नहीं किया। जब गाँव के सब लोग मिल कर उस स्थान पर गये जहाँ उस ब्राह्मण को सिंगा स्वामी ने दर्शन दिये थे, तो वहाँ पर सिंगा स्वामी के "चरण-चिह्न" मौजूद थे। तब गाँव वालों ने उनकी

परिक्रमा की, प्रसाद बांटा, और अपने आपको कृतार्थ माना। यह "छिरवां" गाँव के पास की बात है, और उस ब्राह्मण का नाम "श्याम विप्र" था।

दूसरी घटना यों है—

(२) एक बार "बोरखेड़ा" ग्राम का एक पाँच वर्ष का बालक गुम गया और वह सिंगाजी की समाधि पर पाँच दिन तक रहा। सिंगाजी ने उसका पालन-पोषण किया, उसको घी-खिचड़ी खिलाई, और नदी का जल लाकर पिलाया। वे उसको नित्य दूध, दही, और खारक तथा खोपरे का प्रसाद भी देते थे। उधर घर वाले ढूँढ-ढूँढ कर परेशान हो गये। तब एक दिन सिंगाजी उसे लेकर बोरखेड़ा आये और उसे अदृश्य रूप से लेकर उस गली के सामने खड़े हुए जहाँ से बच्चे की माँ निकली। माँ ने दौड़कर अपने बच्चे को उठा लिया और पूछा 'हे बच्चे, तू इतने दिन कहाँ रहा ?" बच्चे ने अपने सिंगाजी के पास रहने की बात बताई, और कहा 'देखो ना, वे मेरे सामने खड़े हैं। उनके पांव में खड़ाऊँ, हाथ में लकड़ी, कमर में धोती, और सिर पर चादर है।" लेकिन बच्चे को तो वे दीखते थे, माँ को नहीं। तब सब लोग बच्चे को धन्य धन्य कहने लगे और उसके दर्शनार्थ आने लगे।

तीसरी घटना यूं है—

(३) एक बार एक चम्हार सिंगाजी की समाधि के दर्शनार्थ आया तो सिंगाजी ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, और कहा कि "हमारी इच्छा के विरुद्ध शिष्यों ने हमें इस समाधि में आड़ा लिटा दिया है। हमारी इच्छा जलदाग की थी। लेकिन अब तुम घर जाकर उनसे कहो कि हमें खोदकर निकालें व कम से कम बैठी हुई मुद्रा में समाधि दें।"

जब चम्हार ने आकर घर वालों से ये बातें कहीं, तो घर वालों ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। तब सिंगा ने स्वयम् अपनी पत्नि और शिष्य नारायणदास को स्वप्न दिया और उनसे कहा कि तुमने चम्हार की बात पर क्यों नहीं विश्वास किया, शायद तुम्हें गर्व हो गया

है। तब उठ कर सिंगाजी की पत्नि और शिष्य ने विचार किया कि हमें स्वामी की बात मानना ही चाहिये, अन्यथा हमारा अनिष्ट होगा।

तब तत्काल उन्होंने राज को बुलाया और समाधि खुदवाई। उसमें से उनका शरीर ज्यों का त्यों निकला, वह जरा भी खण्डित नहीं था। हजारों लोग उनके दर्शनार्थ आये, सुबह से तीसरे पहर तक उन्हें बाहर रखा, फिर स्नान व पूजन कर उन्हें उत्तराभिमुख, बैठी हुई मुद्रा में, समाधिस्थ किया। यह घटना उनके निधन से छः माह बाद की है। उसके बाद से यह समाधि आज भी ज्यों की त्यों मौजूद है

संत सिंगा और उनकी रचनाएँ

सिंगा की रचनाओं को देखकर ऐसे लगता है मानो हम कबीर से मिल रहे हों—वही फक्कड़पन, वही मस्ती, वही "अनहद" की नाद, वही "शब्द की झंकार", वही "त्रिकुटी महल", वही "शून्य में नयन", और वही अखण्ड ज्योति भरपूर !!!

अपने जिस "बिनदेही" के साहब की खोज में उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया है वे कैसे हैं, इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है-

"रूप नाहीं, रेखा नाहीं, नाहीं है कुल गोत रे।
बिन देहि को साहब मेरो, झिलमिल देखूं जोत रे ॥"

याने जिसका न रूप है, न रेखा है, न कुल है, न गोत है। ऐसा मेरा बिन देह का साहब है। फिर भी मैं उसकी झिलमिलाती हुई जोत का दर्शन कर रहा हूँ।

एक दूसरे भजन की सिर्फ दो पंक्तियों में अव्यक्त ब्रह्म का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

"पाणी पवन से हो पातळा, जैसे सूर्या में घाम।
ज्यों हो शशि का चांदणा, ऐसो मेरो राम ॥"

याने "जो पानी और पवन से भी पतला है, जैसे सूर्य की धूप या चन्द्रमा की चाँदनी। ऐसा अव्यक्त मेरा राम है।" याने जो धूप और चाँदनी की तरह दिखाई देकर भी, पकड़ में न आ सके, और पकड़ में

न आ सकने पर भी जिसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। कितनी सुन्दर और बारीक कल्पना है !

एक और भजन में निर्गुण ब्रह्म का निरूपण सुनिये—

"निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण-हारा।
खोजत ब्रह्म जलम सिराणा, मुनिजन पार न पाया,
खोजतऽ खोजतऽ शिवजी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा।१।
शेष सहस्र मुख रटे निरन्तर, रैन दिवस एक सारा,
ऋषि मुनि ओ सिद्ध चौरासी, ओ तैंतिस कोटि पचिहारा।२।
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा,
सुकमणि सेज शून्य मऽ झूले, ओ सोहम् पुरुष हमारा।३।
वेद कहे और कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा,
काम क्रोध मद मत्सर त्यागो, झूटा जगत पसारा।४।
एक बूंद की रचना सारी, जाका सकल पसारा,
सिंगाजी नऽ भर नजरां देख्या, ओ ही गुरू हमारा।५।"

अपने "पथ" के बारे में उन्होंने लिखा है कि हम तो उस परब्रह्म की राह के पथिक हैं जिनका स्थान बहोत दूर है। निराधार में जिन्होंने मठ किया है, और जहाँ चाँद और सूर्य भी नहीं हैं। भजन की पंक्तियाँ हैं—

"हम पंथी परिब्रह्म का, अपरंपद दूर।
निराधार जहँ मठ किया, जहाँ चंदा न सूर।।"

आगे चलकर वे कहते हैं कि वहाँ चाँद और सूरज कुछ भी नहीं दीखने पर भी, करोड़ों सूर्य की तरह उजेला है। पंक्तियाँ हैं—

"चाँद सूरज वहाँ कछु नहीं दीखे, कोटि भानु उजियारा।
जिनका नयन शून्य मंऽ लागा, तब परवारा सारा।।"

लेकिन अपने इस प्रभु की राह तो विनम्र होकर ही प्रवेश पाया जा सकता है। अतएव वे कहते हैं—

"राह हमारी बारीक है, हाथी नहीं समाय,

सिंगाजी चिउंटी हुई रह्या, नित आवऽ नऽ जाय!"

अन्त में इस दुनियावी आवागमन से मुक्त होने के बारे में आपने लिखा है—

"आवागमन मत कीजे रे मन म्हारा,
फिरी जलमऽ मत लीजे रे।
तत्व पलंग पर सेज बिछावणा,
शून्य मंऽ डेरो दीजे रे।।"

उनकी कुछ रहस्यवादी पंक्तियाँ भी देखिये—

"फल नजदीक नजर नहीं आवे, सदगुरु बिन कौन बतावे।
बिना पीड़ को बिरछा कहिये, डगाळ नवी नवी जावे।
बिना पंख को हंसा कहिये, अकाश उड़ी उड़ी जावे।
बिना पाळा को सरवर कहिये, लहर उलट कर आवे।
सदगुरु बिन कौन बतावे।।"

सम्पूर्ण संत-साहित्य में शायद सिंगा पहिले संत हैं जिन्होंने 'खेती' के माध्यम से आध्यात्मिकता का संदेश दिया। देखिये, अपने एक भजन में किसान के रोज-बरोज के जीवन से सम्बन्धित प्रतीकों के सहारे उन्होंने 'हरी नाम की खेती' का कितना सुन्दर निरूपण किया है! पूरा भजन यों है—

" 'खेती' खेड़ो रे 'हरीनाम' की, जा मंऽ मुक्तो लाभ।
'पाप' का 'पालवा' कटावजो, काटी बाहर राळ।
'कर्म' की कासी एचावजो, खेती चोखी थाय।।
'वास-श्वास' दो बैल हैं, 'सुर्ती' रासऽ लगाव।
'प्रेम' 'पिराणो' कर धरो, 'ज्ञान' 'आर'ऽ लगाव।।
'ओहं' बक्खर जूपजो, 'सोहं' 'सरतो' लगाव।
'मूल मंत्र' बीज बोवजो, खेती लट-लूम थाय।।
'सत' को मांडो रोपजो, 'धरम' पैड़ी लगाव।
'ज्ञान' का गोळा चलावजो, 'सूआ' उड़ी उड़ी जाय।।

'दया' की दावण राळजो, बहुरी फेरा नहिं होय।
कहे 'सिंगा' पहचाण लेवो, आवागमन नहीं होय॥"

अर्थ है—

हे मनेष्य तू हरिनाम की खेती कर।

पाप के पल्लवों को काट कर बाहर फेंक दे, फिर कर्म के डंठलों को बीन डाल, उससे खेत साफ हो जावेगा।

फिर वास और श्वास रूपी दो बैलों को श्रुति की डोर लगा, और प्रेम की लकड़ी हाथ में लेकर उन्हें ज्ञान की कील से हंकाल।

ओहं का बक्खर लेकर उस पर सोहं का सरता बांध, और उसमें मूल-मंत्र का बीज बो दे, तो तेरी खेती लट-लूम हो उठेगी।

फिर सत्य का मण्डप बनाकर उस पर धर्म की सीढ़ी लगा। वहाँ से ज्ञान के गोले चलाना, तो पक्षी दूर दूर तक भाग जावेंगे।

अन्त में, यदि तूने दया की दावण लगाकर उस खेतिहर से नाता जोड़ लिया, तो हे मनुष्य! तू फिर बार-बार के आवागमन से मुक्त हो जावेगा!

खेमदास

ये सिंगा के अनन्य भक्त थे। इनकी लिखी 'सिंगाजी की परचरी' का हम ऊपर विस्तार से जिक्र कर आये हैं। सिंगा-जी पर अभी तक एकमात्र इन्हीं की लिखित पांडु-लिपि प्राप्त है।

दलुदास

ये सिंगा के भक्त ही नहीं, उनके पौत्र भी थे। सिंगा पर इन्हें अनन्य भक्ति थी और ये उन्हें भगवान की तरह मानते थे। इन्होंने उनकी महिमा में अनेकों भजनों की रचना की है। स्वभाव से ये अत्यन्त विनम्र एवं श्रद्धालु थे। इनकी रचनाएँ क्या हैं, मानो संत सिंगा के प्रति एक विनम्र श्रद्धांजलि हैं। देखिये एक गीत में उन्होंने अपने स्वामी से कैसी विनम्र प्रार्थना की है। इसे पढ़ कर कुछ ऐसा लगता है मानो इसमें दलु के शब्दों में समूचे निमाड़ की आत्मा बोल रही है। गीत के बोल हैं—

'सिंगा स्वामी अरजी सुणजो, कोई का दागदार मत कीजो।
नर नारायण देह दीनी है, गुरु म्हारी पल पल खबरा लीजो।
तीन पाव या तन खऽ दीजो, गुरु मखऽ अपणो करी खऽ रखजो।
भरी सभा मंऽ साख राखजो, गुरु मखऽ तन भरी वस्तर दीजो।
सुमरण भजन आरती पूजा, गुरु मखऽ भक्ति खेती दीजो।
कहे जन दलु सुणो भाई साधू, म्हारी असी सदा निभावजो।
कोई का दागदार मत कीजो।'

आज भी शरत् पूर्णिमा के दिन जब सिंगा की कढ़ाई[1] होती है, तो दलु के निम्न भजन से लोग सिंगा की आराधना करते आये हैं—

'धन धन रे गवळी का पूत, बाबा संत उबारण लाग्यो रे
बाबा कोण पुरुष का बाळका, अनऽ कुण घर लियो अवतार रे
राजा भीम का बाळका, अनऽ जेनऽ गवळी घर लियो अवतार रे
बाबा कोण माता का पय हो पिया, अनऽ कोण दिया उपदेश रे
बाबा माता गौरा का पय हो पिया, गुरु मनरंग किया उपदेश रे
बाबा दलु पतित की विनती, गुरु राखो चरण अधार रे।'

सिंगा की समाधि का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

'सत गुरु बाबा की, भल्ली बणी हो समाधि,
इत उंकार उत उंकार सदाशिव, दोनों का दरबार,
मूंदी परगणो आयो निगाह मंऽ, खड़ा किया निशाण,
चार खम्बा की देउळ बिराजे, ऊपर छतरी साजे,
छतरी ऊपर लगी चाँदणी, ऊपर कळस बिराजे,
पैड़ी पैड़ी पद्म जड़िया, हीरा को परकास,
मोतियन की तो बरखा बरसे, वहाँ स्वरूप बिराजे,
झाँगड़ झाँगड़ नौबत बाजे, आप अवलिया गाजे,

---

(१) इसमें सिंगा के पाँच भजन गाकर आरती करके प्रसाद बाटा जाता है।

चार खूट मंऽ डंका बाजे, दोहिरा नौबत बाजे,
दला साध का भला सिपाही, मेहर गुरु की होई,
कुब्जा[1] माळा लई हाथ मंऽ, साधू सम्मुख आवे।'

सिंगा की महत्ता पर उनका निम्न भजन भी अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है—

निर्गुण धाम सिंगाजी जहाँ अखण्ड पूजा लागी,
जहाँ अखण्ड जोति भरपूर, जहाँ झिलमिल बरसे नूर,
जहाँ ब्रह्म ज्ञान मामूर, जहाँ बिरला पहुँचे सूर ॥१॥
जहाँ सोहं शब्द एक सार, जहाँ आदि अन्त ओंकार,
जहाँ पुरी रह्या एक तार, सब घट मंऽ श्री ओंकार ॥२॥
तन मन काया खऽ खोजे, खोजे बिन कैसा सूझे,
जग जाण पाया सूधा, जब निरंकार को पूजे ॥३॥
सूक्ष्म कमल के माँहीं, जहाँ अनहद नाद सुनाई,
सिंगा रमी रह्या तेहि मांई, जहाँ कटे करम की काई ॥४॥

घनजीदास

ये भी सिंगा के शिष्य थे। इन्होंने निमाड़ी में अपने ढंग की अनूठी और अनुपम रचनाएँ की हैं। ये जाति के नाई थे और गोगाँवा के समीप एक गाँव में इनका जन्म हुआ था। वेदा नदी के किनारे आज भी इनकी समाधि बनी हुई है। यों तो इनके लिखे 'अभिमन्यु-ब्याह' 'लीलावती' 'सुभद्रा-ब्याह' आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, लेकिन इन सबसे अधिक प्रसिद्ध इनकी 'मोती-लीला' है। यह १७५ पदों में सम्पूर्ण एक काव्य है। इसमें आपने एक धार्मिक कथा के आधार पर अत्यन्त ही मौलिक एवं नवीन कल्पना संजोई है। भाव, भाषा, उपमा और अलंकार की दृष्टि से यह एक सर्वाङ्ग पूर्ण सुन्दर रचना है। इसमें आपने रूठी हुई राधा को मनाने के लिये मोतियों के व्यापारी के रूप में कृष्ण का वर्णन

---

१. गुप्ती

किया है।

बात यह हुई कि एक दिन राधिका खूँटी पर अपना हार रख कर पानी लेने चली गयी। वहाँ से लौटी तो हार गुम हो गया। उसने अपनी पड़ोसिन सहेलियों से पूछा कि यहाँ कोई आया था। उन्होंने कहा कि हाँ नन्द के लाल कृष्ण आये थे, और वे ही तुम्हारा हार ले गये हैं।

इस पर उसने कृष्ण से पूछा, तब कृष्ण अनेकों कसमें खा-खाकर हार लेने से इन्कार करते हैं, और राधिका उनकी कसमों को झूठी सिद्ध करती जाती है। पति-पत्नी के विनोद के माध्यम से इसमें भगवान कृष्ण के कार्यों की अच्छी चुटकी ली गयी है।

कृष्ण कहते हैं कि ९९९ नदियों का पानी लाओ, और उसे इकट्ठा करो। अगर हमने हार लिया होगा, तो हम डूब जायेंगे। इस पर राधिका कहती है कि, 'सात समुद्र भरे थे, उसमें से तो तुमने मथ-कर चौदह रत्न निकाल लिये। वहाँ तो नहीं डूबे, तो यहाँ क्या डूबोगे!'

इस पर कृष्ण कहते है 'हे राधे! अभी अग्नि बुलाओ और उसमें गरम गोले तपाओ, उसे हम हाथ में रखेंगे, अगर हमने हार लिया होगा तो हमारे हाथ जल जावेंगे। राधिका कहती है 'प्रहलाद के लिये गरम खंब किया था, उसमें तो तुम जले नहीं, तो आग के गोलों में क्या जलोगे!'

तब कृष्ण कहते हैं 'राधिका! इसी घड़ी कुम्भ बुलवाओ। उसमें जहरीला नाग है। उसे हम हाथ में लेंगे, अगर हमने हार लिया होगा तो वह हमें डस लेगा।' इस पर खीजकर राधिका कहती है गेंद के लिये तुम कालिया-दह में कूदे थे और वहाँ से नाग नाथ लाये थे। उसने तो तुम्हें डसा नहीं, तो यह क्या डसेगा!'

और इस तरह कृष्ण की एक भी बात का विश्वास न कर राधिका रूठ कर अपने मैके चली जाती है। तब वहाँ कृष्ण मोतियों के व्यापारी बनकर जो लीला करते हैं उसी का इसमें अत्यन्त सुन्दर वर्णन है।

ये उन्नीसवीं शताब्दि के लोकप्रिय संत कवि हो गये हैं। सिंगा की निर्गुण धारा के बाद निमाड़ी लोक-साहित्य में 'सगुण काव्य-धारा' को प्रवाहित करने का श्रेय इन्हें ही है। ये हरदा तहसील के नजरपुर ग्राम के निवासी, गंगागीर के शिष्य और कृष्ण के उपासक थे। इनका काल संवत् १८४८-१९३२ रहा है। इन्होंने विशुद्ध निमाड़ी में माया, ममता, तृष्णा आदि का सुन्दर उदाहरणों के जरिये विवेचन किया है। निमाड़ी शब्द-रचना की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अद्वितीय हैं।

रंकदास

देखिये, अपने एक भजन में तृष्णा को 'दो मुँह की लांडई' याने (सांप) बताते हुए उसका कितना सुन्दर विवेचन किया है। पूरा भजन यों है—

"तृष्णा दुई मुंडा की लांडई, तृष्णा दुई मुंडा की लांडई।
सब खऽ गिळई जाय ऊ सांडई, तृष्णा दुई मुंडा की लांडई।
निचऽ से अध्धर लई पटकऽ, पटकऽ मांड्या मांडई।
पकड़ऽ तेखऽ छोड़ऽ नहीं रे, असी बुरी छे सांडई॥
राजा गिळया, परजा गिळया, गिळिया पांड्या - पांडई।
ऋषि मुनि वा सबख गिळई नऽ, वा रही अकेली लांडई॥
एक निघा से सबखऽ देखऽ लिखी लिया मांड्या-मांडई।
लिखी करी नऽ सबखऽ चपेट्या, एक नी दियो छांडई॥
रंक कहे तुम अधम-उधारण, तेका आगऽ रांडई।
सूरी तो वो सबखऽ मारऽ, दुई धारा की खांडई।
तृष्णा दुई मुंडा की लांडई॥"

एक दूसरे भजन में आपने माया के बारे में लिखा है—

"माया नऽ सांधो सांध्यो, प्रभु जित देखूं तित घांदो।
प्रपंच मंऽ तो सूरो घणो रे, हरी - भजन मंऽ मांदो,
माता-पिता को गुरू बण्यो रे, तिरया का वचन को बांधो।
नारायण को नाम जगत् मंऽ, जेखऽ संत नन्ऽ रांध्यो।

रांध्या खऽ तो जीमऽ नहीं रे भाई सळ मंऽ नी कूदऽ खांद्यो ।
हरी-भजन तो सुणऽ नहीं रे भाई, कानन दियो छांदो ।
म्हारो म्हारो करी जग मरी गयो, भाई पड्यो मोह को फांदो ।
ऊप्पर दृष्टि देखी रहेयो रे भाई, ज्ञान-दृष्टि को आंधो ।
रंक जसा को तसो गयो रे भाई, आदि अंत मंऽ नांगो ॥"

एक और भजन में ममता को मन की साली बताते हुए आपने लिखा है—

"ममता मन की साळई, या ममता मन की साळई ।
जेखऽ करी दीजे खाक तू बाळई, या ममता मन की साळई ॥
अहंकार तो कास खेत मंऽ, जेखऽ दीजे हाळई ।
जवंऽ तारी खेती पाकसे रे भाई, अच्छी हुसे घवाळई ।
दुई दिन तुखऽ आड़ऽ जासे रे नर, तीसरऽ दिन बुढ़ापा की पाळई ।
पड़यो पड़यो नर सुणाया करीस रे, सब घर का दीसे गाळई ॥
बहुत कह्यो तुखऽ बहुत सुणायो रे, करी गयो आळा-टाळई ।
अरू रंग तुखऽ लगऽ नहीं रे, तू जलम कामळई काळई ।
माता पिता सुत बंधू दारा, आयो वळई वळई ।
रंक कहे थारो जलम सुधार, नहीं तो खासे काळई ।
ममता मन की साळई ॥"

अन्य आधुनिक काल में भामगढ़-निवासी स्वामी ब्रह्मानन्द-कृत 'रामायण' (ओवी) और 'रामस्तवन' निमाड़ी भाषा की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं ।

सन्त परम्परा में सिंगाजी का स्थान

सोलहवीं शताब्दी में निमाड़ में सिंगाजी नाम के एक महान सन्त हो गये हैं। आपका काल संवत् १५७६-१६१६ माना जाता है।

उत्तरी भारत की संत परम्परा में सन्त सिंगाजी के स्थान का जिक्र करते हुये, सन्त साहित्य के मर्मज्ञ श्री परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि :—

"इस परम्परा का आरम्भ यदि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के जयदेव से मानकर २१वीं शताब्दी के महात्मा गाँधी तक वर्तमान समझा जाये, तो यह दीर्घकाल प्रायः ८००—९०० वर्ष का होता है, जिसे छोटी-मोटी विशेषताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न भागों में भी विभाजित कर सकते हैं।"

"इसमें सम्मिलित किये जाने वाले सन्तों के जन्म स्थान का क्षेत्र पूर्व की ओर जयदेव के बंग प्रदेश से लेकर पश्चिम की ओर प्राणनाथ के काठियावाड़ तक एवं उत्तर के लालदेव के काश्मीर से लेकर दक्षिण की ओर सिंगाजी के मध्य प्रदेश तक विस्तृत समझा जा सकता है"[१]

इस तरह आपने संत सिंगाजी को उत्तरी भारत की दक्षिणी सीमा का अन्तिम संत माना है।

सिंगाजी के प्रभाव के सम्बन्ध में श्री प्रयागदत्त शुक्ल ने लिखा है कि "आदिल शाह फारुकी के शासन समय में सारे निमाड़ में सिंगाजी की मनौती होती थी, यहाँ तक कि राजवंश के लोग उनके दर्शनार्थ उनके आसन पर पहुँचते थे। सिंगाजी जीवन के महान तत्वों के द्रष्टा

---

१. श्री परशुराम चतुर्वेदी, ('उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ २१)।'

और अनुभूतियों के माधुर्य से पूर्ण अनेकों गीतों के रचयिता थे।"[२]

इतने लोकप्रिय होने पर भी सिंगाजी ने अपने पीछे किसी पंथ या मत का निर्माण नहीं किया। उनका कहना था कि मनुष्य का जिन विचारों में विश्वास है, तदनुसार आचरण करना ही, उनके प्रसार का सर्वश्रेष्ठ साधन है। निर्गुण उपासक होने के नाते भी उन्हें अपने विचारों को किसी पंथ या मत के संकुचित घेरे से बांधना पसन्द नहीं था।

वे इस दिशा में अकेले हों ऐसी बात भी नहीं। परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि :

"पंथ निर्माण के उस प्रयोगकाल में हमें कुछ ऐसे संत भी मिलते हैं जिन्होंने अपना कोई पंथ नहीं चलाया। उन्होंने कबीर साहब द्वारा प्रस्तुत किये गये वातावरण में अपने मतों की मूल धारणाएँ निश्चित की, उनके अनुसार जीवन यापन का प्रयत्न किया और अपनी-अपनी 'बानियाँ' भी रची। ऐसे सन्तों में सन्त जंभनाथ, शेख फरीद, संत सिंगाजी तथा संत भीखमजी थे।[३]

सिंगाजी कबीर के सम-कालीन थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेकों बार कबीर का उल्लेख किया है। तथा उनके प्रति आदर प्रकट किया है। उनकी रचनाओं पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट है।

"कबीरदास अपने मत के मानने वालों को 'संत' या 'साधु' कहते थे। साधारणतः वे 'भाई' सम्बोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते थे।[४] देखिए उन्होंने लिखा है :

"कहे कबीर सुनो भाई **'साधो'** यह गम बिरले पाई"

---

२. श्री प्रयाग दत्त शुक्ल, 'शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ७३।'

३. श्री परशुराम चतुर्वेदी, 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' पृष्ठ २५७।

४. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, "कबीर" पृष्ठ २२

"कहत कबीर सुनो भाई 'साधो' इसी में सांई हमारा"[५]

सिंगाजी ने भी अपनी रचनाओं में अपने लिये 'जन सिंगा' तथा अपने अनुयायियों के लिए 'साधु' शब्द का प्रयोग किया है। देखिये :

कहे जन सिंगा, सुनो 'भाई साधु', हरे वो सत्य वचन पहचाणा।
कहे जन सुनो भाई 'साधो', उऽ भक्त उतर न पारा।[६]

कबीर की साखी प्रसिद्ध रही है।

'साखी' शब्द के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसादजी द्विवेदी का मत है कि :

'गुरु को साक्षी (या साखी) करके किसी बात को कहने की प्रथा बहुत पुरानी है। 'बीजक' कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है! बीजक में ८४ रमैनियाँ हैं। रमैनिया चौपाई छन्द में लिखी गई है। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी होती है जिनके अंत में एक एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का यह अर्थ होता है कि, कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इन रमैनी रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है! कहा भी है :—

'साखी आँखी ज्ञान की, समुझी देखी मन माँहि'
बिन साखी संसार की, झगरा घूटत नाँहि।' (साखी नं० ३६६)[७]

सिंगाजी के शिष्य खेमदास ने भी 'सिंगाजी की परचरी' में बार-बार 'साखी' शब्द का उल्लेख किया है। लिखा है :

'कहे खेम विचार तब साखी एक कही विचार'
(खेमदास कहते हैं कि अब मैं विचार पूर्वक एक साखी कहता हूँ)
'सतगुरु स्वामी कृपा कर दीन्ही ; बुध तो साख विस्तरी (४२३)

---

५. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'कबीर' पृष्ठ २३४, २३७

६. श्री सिंगाजी के भजन।

७. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी। 'कबीर' (१८)

(सतगुरु की कृपा से मैंने अपनी बुद्धि से साखी का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है)[८]

इसी तरह सिंगाजी की 'तिथि और वार' नामक रचनाएँ प्राप्त हुई है। कबीर द्वारा लिखित रचनाओं के भी ये नाम प्रसिद्ध रहे हैं। तिथियों को लेकर की गई रचनाओं को गुरु ग्रंथ साहिब में (थिति) अर्थात् 'तिथि' तथा दिनों के अनुसार बनी हुई को 'वार' कहा गया है।[९]

ब्रह्म का वर्णन करते हुये कबीर ने अपनी रचनाओं में जिन शब्दों एवं उपमाओं का प्रयोग किया है, प्रायः वे ही ज्यों की त्यों सिंगाजी की रचनाओं में भी मिलती है। देखिये निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुये कबीर ने लिखा है :

'अलख निरंजन लखे न कोई, निर्भय निराकार है सोई'
'सुनि असथुल रूप नहीं रेखा, द्रष्टी अद्रष्टी छिप्यो नहीं देखा'

अर्थ (वह 'अलख' निरन्जन है जिसे कोई 'लख' नहीं सकता। वह निरभै व निराकार है। वह न शून्य है न स्थूल है। उसकी कोई रूप रेखा नहीं। वह न दृश्य है न अदृश्य है। उसे न तो गुप्त ही कह सकते और न प्रकट कह कर पुकार सकते हैं)।[१०] सिंगाजी ने भी ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा है।

'रूप नाहीं रेखा नाहीं, नांही है कुल गोत रे।
बिन देह को साहब मेरो, झिलमिल, देखूं जोत रे।'

अर्थ : उसके न तो रूप है न रेखा। उसका न कुल है न गोत्र, ऐसा बिना देह का मेरा साहब है जिसकी झिल मिल ज्योति को मैं

---

८. श्री खेमदास 'सिंगाजी की परचरी', (१...४२३)

९. श्री परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरी भारत की संतपरंपरा' (१८१)

१०. श्री परशुराम चतुर्वेदी 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' (१६२-१६३)

देखता हूँ। इसी तरह एक और जगह लिखा है।

'निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण हारा
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा,
शुकमणि सेज, शून्य म झूले, ओ सोहं पुरुष हमारा।'

ब्रह्म की कैसी विराट कल्पना है। कबीर जिस देश के वासी थे वहाँ का वर्णन करते हुये उन्होंने लिखा है।

हम वासी उस देश के जहं बारह मास विलास
प्रेम झरे विकसे कँवल, तेज पुंज परकास।
हम वासी उस देश के, जहं बारही मास बसन्त।
नीझर झरै यहाँ अभी, भीजत है सब संत।
हम वासी उस देश के, जहं जाति वरन कुल नाहि।
शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नाहि।
हम वासी उस देश के जहाँ परब्रह्म का खेल।
दीपक जरे, अगम्य का, बिन बाती बिन तेल।

अर्थ : हम उस देश के वासी हैं जहाँ बारहों महिने वसन्त है। जहाँ प्रेम का निर्झर झरता रहता है। जहाँ अनंत ज्योति पुंज से महा अमृत बरसता रहता है। जहाँ जाति, कुल वर्ण का विशेषत्व नहीं। जहाँ आकाश और धरती में अन्तर नहीं। जहाँ पर ब्रह्म की अन्तर केलि निरन्तर चल रही है। जहाँ अगम्य का दीपक बिना बाती और तेल के ही जल रहा है।

अपूर्व है वह देश। कबीर उसी देश के वासी थे।[११] सिंगाजी ने इस सम्बन्ध में लिखा है :

"हम पंथी परिब्र　　, अपरंपद　　दूर
निराधार जहं मठ किया, जह चन्दा ना सूर।"

हम तो उस परब्रह्म की राह के पथिक हैं—जिसका स्थान बहुत

---

११. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कबीर' पृष्ठ २११।

(पुस्तकालय)

दूर है । निराधार में जिन्होंने मठ किया जहं चाँद ओर सूरज भो नहीं

[illegible] लिखते हैं :

चाँद सुरज वहाँ कुछ नहीं दीखे , कोटि भानु उजियारा ,
जिनका नयन शून्य मंऽ लागा , तब पसारा सारा ।"

वहाँ चाँद और सूरज कुछ भी नहीं दीखते । फिर भी करोड़ों सूर्यों की तरह उजेला है । अन्त में कबीर और सिंगा दोनों ने जिस सहज समाधि की अवस्था में पहुँच कर ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त किया उसका वर्णन करते हुये कबीर ने लिखा है :

"इस प्रकार मुझे ब्रह्म ज्ञान हो गया । और मैं करोड़ों कल्पों तक भी इसी प्रकार सहज समाधि में विश्राम करूँगा । दयालु सद्गुरु की कृपा द्वारा अब हृदय कमल विकसित हो गया और परम ज्योति का प्रकाश होते ही भ्रम के निराकरण से दशों दिशाओं सूझने लगी । जान पड़ा जैसे रात्रि का अन्त हो गया । सूर्योदय हो चला । नींद टूट गई । मृतक हाथ में धनुष ले उठ खड़ा हुआ । और काल अहेरी स्वयं भाग चला ।"

"उस अज्ञात अखण्ड और अनुपम रूप के दर्शन का अनुभव वैसा ही अकथनीय है, जैसा मिठाई खाकर माधुर्य के कारण मन ही मन प्रसन्न हो संकेत मात्र करने वाले गूंगे का हुआ करता है ।"

उक्त सहज रूप के प्राप्त होते ही वृक्ष में मानों बिना फूल के फल दीख पड़े । बिना हाथ के तुरही बजती सुन पड़ी, और बिना पनिहारिन के गागर भर गई । देखते ही देखते कांच कंचन में परिणीत हो गया । 'और बिना मनाये मन मान गया' । पक्षी (सुरती) ऐसा उड़ा कि उसका पता ही नहीं चला । और "जल जैसे जल में प्रवेश कर जाये वैसे ही उसमें जाकर मिल गया ।"

"अब न पहले की भाँति देवों की पूजा करनी है और न वैसे तीर्थ स्नान की ही आवश्यकता रह गई है । अब तो भ्रम के नष्ट होने से

आवागमन तक भी नहीं हो सकता। अब अपने में आपको देख लिया, आप ही आप सुनने लगा। अपने आप ही कहना सुनना रह गया, और अपने आप ही समझना-बुझना भी रह गया। अब अपने परिचय की ही तारी लग गई और अपने आप में सदा के लिये प्रवेश कर गया।"[१२]

---

१२. श्री परशुराम चतुर्वेदी, 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' पृष्ठ २०८।

सिंगाजी की परचरी : एक अध्ययन

यद्यपि सिंगाजी की कोई प्रामाणिक जीवनी प्राप्त नहीं है, लेकिन खेमदास लिखित 'सिंगाजी की परचरी' से सिंगाजी के जीवन की अनेकों महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है। यहाँ उसी के आधार पर उनके जीवन की एक झलक प्रस्तुत है।

प्रारम्भिक जीवन

'अपने प्रारम्भिक जीवन में सिंगाजी अत्यन्त ही ऊधमी थे। वे नौकरी करते, गाय भैंसों को चराते, बाँस की बन्शी बजाते मथवाड़ गाते तथा देव और बड़वों को घुमाते थे। वे कानों में मुद्रिका पहनते तथा कमर में कटारी तथा तीर कमान रखते थे।[१]

संस्कार

उनके पूर्व जन्म के संस्कार इतने अच्छे थे कि जैसे ही उन्होंने मनरंग स्वामी के दर्शन किये और उनकी निर्गुण वाणी को सुना तो अपने पाँचों हथियार डाल दिये और मन वचन कर्म से अपने समस्त विकारों को त्याग कर हरि की भक्ति में लीन हो गये।

जाति

जाति से गौली परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें अनेकों कटु वचन सहने पड़े थे। वे जब दीक्षा के लिये गुरु के पास पहुँचे तो

---

१. कड़ऽ कटार तरकस तीर कमाण, सेलसी रोपी मुद्रिका कान।
ऐसी भात दरसन को आये, कर जोड़ी जो सीस नवाये॥
सिंगाजी की परचरी ॥११॥

मनरंग स्वामी ने कहा था...'तुम जाति के गौली और मन के मैले हो जो दूध के लिए भैंस से पाड़े का विछोह करा देते हैं, तुम इतने मूढ़ और गँवार हो कि तुम्हारे घर साक्षात भगवान कृष्ण ने अवतार लिया लेकिन उनको तुमने नहीं पहचाना, जिसने अपने मुख में तीनों लोक दिखाये उससे तुमने गाय और भैंसें चरवायीं, जिसने वसुदेव और देवकी का उद्धार किया तथा देवताओं का कार्य सिद्ध किया उसको तो तुमने नहीं समझा फिर प्रेम और भक्ति की बात क्या समझोगे ?

इसी तरह सिंगाजी जब मान्धाता पहुँचे और उनकी कीर्ति बढ़ने लगी तो सन्यासियों ने कहा था...'कि यह गृहस्थ गौली साद कहलाने लगा है और घर बैठे पुजाने लगा है, इसने सब भेषों की मर्यादा नष्ट कर दी है।'

इसी तरह सिंगाजी जब पीपल्या गाँव के नाले को ही गंगा समझ कर उसमें स्नान करने लगे तो लोगों ने उनका मजाक उड़ाते हुये कहा था...'कि सिंगाजी आखिर गौली के गौली ही रहे, वे नाले में ही स्नान करते हैं...'

कबीर के समकालीन

सिंगाजी कबीर के समकालीन थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेकों बार कबीर की चर्चा की थी। सबसे पहले उन्होंने गुरु का महत्व दर्शाते हुये कहा था 'गुरु के प्रताप से ही ध्रुव ने अटल पद प्राप्त किया और गुरु के ही प्रताप से प्रह्लाद ने अमर पद पाया औरों का कहाँ तक वर्णन करूँ नामदेव और कबीर ने भी गुरु की ही शरण ली थी।'

एक बार जब गाँव की समस्त भैंसों को चोर चुराकर ले गये और सब लोग उन्हे ढूँढने के लिए गये तब सिंगाजी घर ही पर बैठे मुस्कराते रहे, इस पर उनकी माँ ने उन्हें डाँटा था तब मन ही मन वे समझ गये कि 'सब की माता ऐसी ही होती है। एक दिन कबीर की माँ ने भी कबीर को इसी तरह डाँटा था। भक्त का विरोध सभी करते हैं।'

एक बार जब लोगों ने सिंगाजी के मान्धाता में दर्शन किये लेकिन घर आने पर जब उन्हें पता चला कि सिंगाजी तो कहीं नहीं गये थे इस पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा कि हे स्वामी आप कब आये। इस पर सिंगाजी ने कहा था, 'यह बात तो सद्गुरु जानते हैं, मेरी कही हुई बात को कौन मानेगा। नामदेव और कबीर तक की बात को किसी ने नही माना और गोरख की बात का तो लोगों ने मजाक उड़ाया था फिर मुझ गरीब की कौन सुनता है।[२]

एक बार एक महन्त ने उनसे नाराज होकर कहा था कि अगर तुम साद हो तो कुछ चलकर दिखाओ तभी हम तुमको सच्चा मानेंगे और तुम्हीं को रामानन्द और कबीर कहने लगेंगे। इस पर सिंगाजी ने कहा था कि 'कहाँ तो श्री रामानन्द व कबीर और कहाँ मैं? मैं तो उनके चरण की धूल हूँ। यह पदवी मुझे मत दीजिए। मैं तो गरीब हूँ, मुझे यह शोभा नहीं देती।[3]

परचा

उन दिनों परचा माँगने का बड़ा जोर था। एक दिन एक सन्यासी ने एक मुगल (फकीर) के पास जाकर सिंगाजी की बुराई की और कहा कि उन्हें बुलाकर उनसे परचा माँगना चाहिए। इस पर फकीर ने कहा 'पहले परचा तुम दो फिर मैं उन्हें बुलाऊँगा। साद और सती से जो परचा माँगता है उसका भला नहीं होता। हम तो मानते हैं कि साहब (ईश्वर) सब में है। ऐसा कोई नहीं है जिसमें सत्य नहीं है।'

---

२. नामदेव कबीर की बात न मानी, गोरख पन्थ से खेचरी ठाणी
मो गरीब की कोण चलावे, जैसे तैसे स्वामी छैव निभावे। ८३।

३. कहे स्वामी मैं हूँ उनके पग की धूल, कहाँ श्री रामानन्द कहाँ कबीर
ये ही पटतरो मो ही न दीजे, हऊँ अनाथ मौपे एक न सीजै।
॥२१३॥

सिंगाजी से भी अनेकों बार परचे माँगे गये और वे उसमें सफल हुए लेकिन इससे उन्हें बड़ा दुःख होता था। एक बार तो उन्होंने कहा था कि 'कलियुग में यह कैसी उल्टी रीत चली है कि शिष्य गुरु से परचा माँगता है। परचा तो भगवान ही पूरा कर सकते हैं।[४]

निर्गुण उपासना

सिंगाजी के जीवन की जो सबसे बड़ी विशेषता थी वह यह कि उन्होंने गृहस्थ होकर भी निर्गुण की उपासना की तथा निर्गुण की उपासना करके भी वे लोक जीवन से तदाकार रहे। कारण दीक्षा के समय जब उन्होंने गुरु से मोह माया त्याग कर उनकी शरण में रहने की इच्छा व्यक्त की तो मनरंग स्वामी ने कहा था कि 'हे भाई, बिना माया के भक्ति नहीं होती। पूजा अर्चना के लिये ही तो भगवान ने हमें देह दी है तथा नामस्मरण के लिये यह जिह्वा दी है। जिस तरह बिना वस्त्र के देह नग्न रहता है, उसी तरह बिना माया के परमार्थ नहीं होता। रामानन्द ने भी कठिन भक्ति की ओर परमार्थ की कावड़ घुमाई और कबीरदास तो परमार्थ में बाजार में अपने कपड़े बाँट आये। ऐसा जो एक चित्त होकर परमार्थ करता है वही सच्चा आदमी है।[५]

सिंगाजी ने गुरु के इन वचनों का अक्षरशः पालन किया।

सिंगाजी का तीर्थ व्रत में विश्वास नहीं था। उनका कहना था कि जिसके मन में दुविधा नहीं है उसके सब तीर्थ उसके मन में ही हैं।

---

४. उलटी रीत चली कलिजुग; सिख परचो माँगे गुरु के आगे।
।१८३।

५. कहे 'मन रंग' सुणो ऐ भाई, बिन माया कैसी भगताई (४४)
बिन माया परमारथ न होई, जेउ बसतर बिन नगन देही (४५)
परमारथ काजे कावड़ फेरी, कठण भगत रामानन्द केरी
परमारथ तो कबिरा कीन्हों, बसतर फाड़ी हाटमा दीन्हो (४६)

एक बार जब उनसे ओंकारेश्वर चलने का कहा गया तो उन्होंने कहा था कि 'जहाँ भी पत्थर और पानी है वहीं पर सब तीर्थ हैं। आदि ओंकार तो सब के घट में बसते हैं।' उन्होंने पीपल्या के नजदीक बहने वाले नाले में ही गंगा के दर्शन किये और उसी में स्नान करने लगे। जब लोगों ने उनका मजाक उड़ाया तो बोले 'हम तो आलसी आदमी हैं, दूर नहीं जाना चाहते। हमारे तो तीर्थ और भगवान सब यहीं बसते है। जिसके मन में सन्तोष है वह अपने में सभी कुछ पा लेता है।[६]

सिंगाजी ने अपने जीवन काल में कोई मन्दिर या मढ़ी नहीं बनवायी। एक बार जब शिष्यों ने आग्रह किया तो बोले 'मढ़ी बनाने की क्या जरूरत है। उस घट-घट वासी ने बिना घड़े इस अखिल ब्रह्माण्ड को हमारे लिये घड़ दिया है। उसने धरती का गलीचा बिछाकर उपर से बिना डोर के आकाश का तम्बू तान दिया है। यह समूचा विश्व ही हमारे लिये तो मढ़ी है।'

लोक-प्रियता

सिंगाजी अपने जीवन में अत्यन्त ही लोकप्रिय थे। वे जहाँ भी पहुँचते अनेकों लोग उनके दर्शनों को उमड़ पड़ते थे। वे जब मान्धाता आये तो उनका ठाट देखने लायक था। उनके साथ योगी बैरागी और सन्यासी थे। सबकी अलग अलग धूनियाँ लगी थीं और सबके बीच में सिंगाजी का आसन था। उनकी व्यवस्था के लिए अनेकों स्नेही जन आये थे और शिष्य समुदाय भी साथ में था। नित्य अनेकों लोग उनके दर्शनों के लिये आते, रुपयों पैसों की भेंट चढ़ती, टोकनों से प्रसाद आता तथा शक्कर और मिठाई बँटती रहती थी।

---

६. सींगाजी बोले निरमल वाणी, सकल तिरथ जहाँ पत्थर पाणी।
आद ऊंकार बसे सब घट माही, सत गुरु परचे हम पाया याही।
(६९)

वे सदा लोगों से घिरे रहते थे। उनके अनुयायी पगड़ी बन्द किसान थे। एक बार जब कुछ वैरागी उनके अखाड़े में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सिंगाजी पगड़ी बान्धने वाले किसानों की सभा में उपदेश दे रहे थे।

इसी तरह एक बार जब दो ब्राह्मण उनकी परीक्षा लेने पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि 'वे तो गाँव में नहीं रहते वरन् सरस्वती के किनारे रह कर गाँव के बालकों को पढ़ाते हैं। वे जब वहाँ पहुँचे तो उन्होंने देखा कि उस जंगल में भी सभा जुड़ी थी और सिंगाजी उस सभा के बीच बैठ कर उपदेश दे रहे थे।'[७]

वे जब पीपल्या आकर बसे तो वहाँ मिलालों के कुछ टप्पर थे। वे लोग भक्ति का मर्म नहीं जानते थे। डोंगरू हरजी नामक एक मिलाला उस गाँव का पटेल था। सिंगाजी ने उसे जब अपना शिष्य बनाया तो गौलियों ने बहुत उत्पात मचाया। बोले कि अब इन्हें जाति में नहीं लेना चाहिये और इनके घर को जाति से अलग कर देना चाहिये। लेकिन वे जब सिंगाजी के पास पहुँचे तो उनके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। उनके विचार बदल गये और वे सिंगाजी के चरणों में प्रणाम कर वापस लौट आये।

ईश्वर दर्शन

एक बार सिंगाजी को ईश्वर के दर्शन भी हुए थे। बात यह हुई कि वे जब पीपल्या आये तो उनके बड़े भाई लिम्बाजी ने कहा कि मैं भैंसें चराने जाता हूँ तब तक तुम भैंसों के लिये अक्खर बना लो। सो जब वे सब्बल लेकर गढ्डा खोदने लगे तो उनकी सब्बल से कटकर एक केचुआँ मर गया। इस पर उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ और वे

---

७. तब घर के लोग वचन उचरे, गयो साद सरसती के दुवारे (९१)
जिंहा तापे अती तपन मा, पढ़ावे बालक नहीं आवे गाँव मा (९२)

चादर तान कर सो गये। रात के चौथे पहर उन्हें किसी ने पुकारा। वे चौंके उन्हें लगा कि 'यह आवाज मनुष्य की नहीं है। फिर भी वे साहस कर दरवाजे पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि साक्षात हरि खड़े थे। उनके गले में स्फटिक की माला थी और वे कच्छ कसे हुए थे। उनका छोटा और भरा हुआ शरीर था और उनका श्याम वर्ण मन को मोह रहा था। सिंगाजी ने गद्‌गद्‌ होकर उनके चरणों में प्रणाम किया और उन्होंने उन्हें अभय रहने का आशीर्वाद दिया।[८]

परिनिर्वाण

सिंगाजी के परिनिर्वाण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उन्होंने गुरु के कहने से देह त्यागी। लेकिन इस ग्रन्थ से पता चलता है कि गुरु के कहने से पन्द्रह दिन पहले ही उनके मन में यह विचार आया था कि 'अब देह त्याग कर अभय पद प्राप्त करना चाहिये। इसी बीच एक शिष्य के हाथ गुरु का सन्देशा भी आया कि यदि श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन देह छूटे तो उत्तम हो।'[९]

सिंगाजी ने सोचा कि गुरु की बात मान कर पूर्णिमा के पहले ही यह काम कर लेना चाहिये। अतएव वे श्रावण शुक्ल नवमी के दिन हृदय में भगवान का स्मरण कर उत्तर दिशा की ओर मुँह करके

---

८. कहे सिंघा हाक माणुस की ना होई, गैबी पुरुस आयो कोई
चैत्यों स्वामी दुवारे आयो, गैबी पुरुस को दरसन पायो (१२४)
वहाँ हरि कछनी काछे, गले फटीकर तुम्बा बिराजे (१२५)
छोटो असतुल गरबो गात, स्याम मुरत मदन विख्यात (१२६)

९. येक समे स्वामी मरण बिचारयो, अभय पद मरसणकू मन धारयो (३०१)
श्रावण सुदी नवमी सार, ता दिन स्वामी कियो विचार (३०५)
भयो स्वामी अन्तरध्यान, निकसी जोत जोत में समाणी (३०६)

आसन लगाकर बैठे और उन्होंने अपनी देह त्याग दी और वे उस अमर पद को प्राप्त हुए जहाँ अखिल ब्रह्माण्ड ही शरीर बन जाता है। उन्होंने मूँदी क्षेत्र के पीपल्या ग्राम में अपनी देह त्यागी थी जहाँ आज भी उनकी समाधि बनी हुई है तथा सिंगाजी के नाम से ही उस गाँव का नाम भी सिंगाजी कहलाने लगा है।

समाधि

समाधि के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ से एक नई बात का पता चलता है। अपनी मृत्यु से छै माह पश्चात उन्होंने एक चम्हार को दर्शन देकर कहा कि 'मेरे शिष्यों ने मेरी बात नहीं मानी, मैंने अपने शरीर को जलदान देने की बात कही थी लेकिन उन्होंने अपने मन की चलाई तथा मुझे समाधि में आड़ा आसन दे कर लिटा दिया है अतएव शिष्यों से जा कर कहना कि वे हमारी देह को निकालें तथा बैठे हुए आसन से हमें समाधि दें।' लेकिन चम्हार की बात को किसी ने नहीं माना तब उन्होंने अपनी पत्नी तथा नारायण नामक शिष्य को स्वप्न दे कर यह बात कही।

और इस तरह उनकी मृत्यु से छै माह के पश्चात समाधि से उनकी देह को निकाला गया, उसे स्नान कराया और उत्तर की ओर मुँह कर के बैठे हुए आसन से उन्हें पुनः समाधि दी गई। उनके दर्शनों के लिए अनेकों लोग आये थे तथा छै माह के पश्चात नख केश सहित उनकी देह को अखण्ड पाकर सबने उनका जय जय कार किया था।

मेला

सिंगाजी के परिनिर्वाण के पश्चात उनकी स्मृति में शरद पूर्णिमा के दिन मेला करने का विचार सबसे पहले उनके शिष्य नारायण के मन में आया था। उन्हीं की प्रेरणा से तब से आज तक यह मेला

लगता आया है।[10]

उपदेश

एक दिन सिंगाजी ने एक सन्यासी को उपदेश देते हुए कहा था कि 'एक वृक्ष की यह सारी शाखा है। जिसके मन में जैसा भाव है वह वैसा रस चखता है। साखी और शब्द सभी सीखते और गाते हैं लेकिन निर्गुण शब्द को बिरला जन ही पाता है। जिस शब्द से सारी सृष्टि रची है, जमीन आसमान स्त्री और पुरुष बने हैं जिसमें जीव जन्तु और जानवर, चाँद सूर्य तथा पवन और पानी है। जिस शब्द में बावन अक्षर व नौ अंक है उसी में गुरु और शिष्य भी है। इस शब्द में तीर्थव्रत वर्ण और विवर्ण समाये है उसी शब्द में राम बसते है। कोई दाँव करता है और कोई उपाय करता है लेकिन प्रेम और भक्ति को बिरला जन ही पाता है।[11]

---

१०. कीजै सरद समै को मेलो, ये भाखें नारायण चेलो
गुरु को सबद मेटो जणि कोई, कीजे मेलों परमारथ होइ (३२२)

११. एक ब्रच्छ जाकी सगरी साखा, जाके घट जैसो सो तैसो रस चाखे।
साखी सबदी सीखे और गावे, निरगुण सबद बिरला जनपावे।
सिंगाजी की परचरी—(३५१)

सिंगाजी की बाणावली

सिंगाजी द्वारा लिखित ग्रन्थों में 'सिंगाजी की बाणावली' का महत्व पूर्ण स्थान है। बाणावली का अर्थ है 'बाण की तरह अचूक सिंगा के निर्णय'।

देखिये, इसके प्रारंभ में गुण दोषों का विवेचन करते हुए आपने कितनी सुन्दर उपमायें संजोई हैं। गुणों का वर्णन करते हुए आपने लिखा है—

'रूप ते माटी को,
तेज ते नयन को,
धीरज ते वृक्ष को,
भूख ते अगिन की,
बोझ ते जमीं को,
हलकाई ते आसमान की।'

अभी तक रूप के सम्बन्ध में अनेकों कल्पनायें सुनी थीं। लेकिन 'रूप ते माटी को' कह कर मानों सिंगा ने रूप वर्णन की पराकाष्ठा कर दी। माटी—जो प्रकृति के माध्यम से नित्य नये रूप धरती आयी है और जिसके अंग प्रत्यंग से मानों सौन्दर्य झरता आया है।

इसी तरह नयन से बढ़ कर तेज, वृक्ष से बढ़ कर धीरज, अग्नि से बढ़ कर भूख, धरती से बढ़ कर भारीपन, और आकाश से बढ़ कर हल्का और कौन होगा ?

आगे चल कर दोषों के बारे में आपने लिखा है—

'दोष ते कुजबाँ बोले का,
दोष ते कुदृष्टि देखे का,
दोष ते मेरी तेरी किये का,
दोष ते आत्मा कलपाये का,
दोष ते बिन दोषी को दोष लगाये का।'

याने किसी को बुरी जबान बोलना, बुरी दृष्टि से देखना, मेरी तेरी करना, किसी की आत्मा दुखाना और निर्दोष को दोष लगाना ये सब तो दोष हैं ही, लेकिन सिंगा कहते हैं कि इन सब से बड़ा एक और दोष है, और वह मोठा दोष है—

'ब्रह्म को छाड़ और देव को सेवे का'।

सब से बड़ा दोष है, ब्रह्म को छोड़ कर और किसी देवी देवता को पूजना। इससे पता चलता है कि सिंगा निर्गुण धारा के कैसे कट्टर समर्थक थे।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए आपने लिखा है

'देवी देवता पूजन ते स्वारथ का,
नाद ते अनहद का,
बरखा ते सोहम् की,
रंग ते तत्व का,
देही ते जीवात्मा,
बिन देही ते परमात्मा।'

याने देवी देवताओं को पूजना तो स्वार्थ की बात है। असल में जो सदेह है वही जीवात्मा, और जो विदेह है वही परमात्मा है। जिसने इस रहस्य को जान लिया, उसके लिए अनहद से बढ़ कर नाद, सोहम् से बढ़ कर वर्षा, और तत्व से बढ़ कर और कोई रंग नहीं होता।

अंत में आपने आत्मा में परमात्मा के दर्शन का रहस्य समझाते हुए लिखा है कि जैसी रचना बाहर है वैसी ही रचना भीतर है।

'जैसे देह जमीन है, इसमें सिर आकाश है।'

नयन, चाँद सूर्य हैं। त्रिगुण नदियाँ हैं। भय भ्रम का बादल है। अनहद गरजना है। षट् कमल, षट् चक्र हैं, और सोहम् पुरुष इसका परमेश्वर है।'

छोटे छोटे शब्दों में, सहज सरल उपमाओं के सहारे आपने अव्यक्त ब्रह्म का कैसा विराट दर्शन कराया है।

सिंगाजी की परचरी

(हिन्दी अनुवाद)

प्रारंभिक जीवन

श्री गणपति और सरस्वती का स्मरण कर मैं श्री सिंगाजी बाबा की परचरी लिखता हूँ ।

खेमदास कहते हैं, जब से सतगुरु की मुझ पर कृपा हुई है तब से मुझमें बुद्धि का संचार हुआ है और अब मैं एक साखी विचार पूर्वक कहता हूँ ॥१॥

अब आगे बिस्तार पूर्वक कथा कहता हूँ श्रोता जन विचार पूर्वक सुनें । सतगुरु के प्रताप से यह कथा कह रहा हूँ । उनके चरणों की शरण में सदा भक्ति बनी रहे ॥२॥

उद्यमी स्वभाव

सिंगाजी जाति के गौली थे । और वे बहुत अच्छी बाँस की बंशी बजाते थे । वे गीत गा कर देव बड़वों को घुमाते थे और हरि भक्ति का भेद नहीं जानते थे ॥ ३॥

वे हरसूद नगरी में रह कर नौकरी करते थे और सिवाय उन्मत्तता के दूसरी बात नहीं जानते थे । ऐसा करते करते बहुत दिन बीत गये ॥४॥

उनके माता पिता तथा समृद्ध परिवार था और उनके यहाँ गाय भैंसों की अपार सम्पत्ति थी । वे रात दिन उन्हीं के संग में रहते थे और भक्ति का मर्म नहीं जानते थे ॥५॥

एक दि एक जाति वाले के घर से किसी शुभ कार्य का निमन्त्रण

आया और वे निमन्त्रण वाले के साथ चले गये तथा सन्ध्या समय उनके यहाँ पहुँचे ।।६।।

मनरंग स्वामी का प्रथम दर्शन

उधर से निर्गुण हरि का गुण गाते हुए श्री मनरंग स्वामी आये। उन्हें देखते ही उनकी सूरत हृदय में समा गई और उनकी वाणी कानों में पड़ते ही मानो सिंगा जी के मन में ज्ञान उत्पन्न हो गया ।।७।।

वे सोचने लगे, हमने बाँस की बंशी बहुत बजाई तथा मथवाड़ गाकर देव बड़वों को भी खूब घुमाया, हमने योगी यतियों की भी खूब सेवा की, लेकिन ऐसा गुण तो किसी ने नहीं बताया ।।८।।

और वे पश्चाताप करने लगे कि हमने हरी भक्ति का मर्म नहीं जाना, हमारा जनम तो वृथा गया। उन्हें लगा कि गुरु करो तो वही रास्ता बता सकता है और उसी से अखंड सौभाग्य मिल सकता है ।।६।।

तब सिंगाजी गुरु के चरणों का ध्यान धर कर तथा अपने दोनों हाथ जोड़ कर मनरंग स्वामी के सामने आये और गुरु गुरु कह कर उन्होंने उन्हें पुकारा ।।१०।।

उनकी कमर में कटारी, कन्धे पर तरकश, तीर और कमान, गले में सेली तथा कानों में मुद्रिका डली थी। इस तरह वे दर्शन के लिये आये और उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया ।।११।।

ऐसी अवस्था में गुरु गुरु कह कर जब उन्होंने पुकारा तो मनरंग स्वामी उनकी ओर देखते ही रह गये। सिंगाजी बोले—'हे स्वामी, मैं आपके आधीन हूँ मुझे अपनी शरण में स्थान दो' ।।१२।।

इस पर मनरंग स्वामी बोले—'हे भाई, उपदेश कहने से लगता नहीं है, मोह माया सहज ही मरती नहीं है। फिर राम से सगाई करना तो अत्यन्त कठिन है' ।।१३।।

तब, जैसे गुरु के प्रताप से तोता मैना भी पाठ पढ़ने लगते हैं इस

तरह सिंगाजी बोले कि—'यदि पूर्व जन्म के पुण्य होंगे तो ऐसा होते देर नहीं लगेगी' ॥१४॥

इतना सुन कर वे निवास स्थान पर आये और उसके बाद दो दिन में अपने घर पहुँच कर उन्होंने अपने पहिले सारे काम भुला दिये और सब कुछ भुला कर प्रभु के चरणों में मन लगाया ॥१५॥

उन्होंने अपने तरकश और तीर भी फेंक दिये तथा समस्त विकारों को छोड़ कर मन वचन और कर्म से समस्त हथियार डाल कर गुरु करने का निश्चय किया ॥१६॥

विश्राम साखी

निर्वाण का बाण लगते ही वह आर पार हो गया। तथा उन्हें अपने मन को मारने में क्षण भर की भी देर नहीं लगी ॥१७॥

उन्होंने सच्चे मन से गुरु करने का निश्चय किया तथा गुरु का ध्यान धर कर वे घर से निकल मनरंग स्वामी का दर्शन करने के लिये पहुँचे ॥१८॥

मनरंग स्वामी से दूसरी बार भेंट

मनरंग स्वामी राम नगर में रहते थे। जहाँ स्वयं राम उनके हृदय में बसते थे। सिंगाजी वहाँ पहुँचे और उन्होंने हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया ॥१६॥

तथा चरण स्पर्श कर बोले—'हे सतगुरु स्वामी, अब मुझ पर दया कीजिये तथा उपदेश देकर मुझे अपना बना लीजिये। मैं अत्यन्त अनाथ हूँ मुझे आपके प्रेम का सुख दीजिये' ॥२०॥

तब मनरंग स्वामी निर्मल वाणी से बोले—'प्रेम और भक्ति क्षण भर भी स्थिर नहीं रहती। यदि तुम्हें उपदेश की इच्छा है तो मोह माया त्याग कर उदासी बनकर घूमो ॥२१॥

रात दिन राम की सेवा करो और सबको छोड़ कर 'आत्म देव'

को पूजो। समस्त आत्माओं को अपने समान समझो तब ही साईं की सेवा सच्ची होगी ॥२२॥

तुम तो नौकरी पेशा हो तुमको उपदेश कैसे लगेगा। तुम जाति के गौली हो और मन के मैले हो तथा भैंस से बच्चे का बिछोह कराने वाले हो ॥२३॥

तुम्हारे ही घर में स्वयं भगवान कृष्ण ने अवतार लिया उसे तो तुमने पहचाना नहीं और जिसके मुँह में तीनों लोक दिखाई दिये उसी से तुमने गायें चरवाईं। ऐसे तो तुम मूढ़ और गँवार हो ॥२४॥

बसुदेव और देवकी का जिन्होंने उद्धार किया, जिन्होंने सबके कार्य सिद्ध किये, जो प्रेमी स्नेही और भक्तों के रक्षक हैं वे ही अजर अमर श्री रघुनाथ जी हैं ॥२५॥

ऐसा रत्न हाथ में नहीं आता और गुरु के बिना कोई ज्ञान नहीं बताता। तुम्हारी तो मल मूत्र की देह है। तुम कैसे प्रेम और स्नेह को जानोगे ? ॥२६॥

आत्म स्वरूप जो कोई भी आवे उसे ही साहब समझ कर मानो और कोढ़ी कुटिल और मलिन अंग का ही क्यों न हो उसमें भी साहब को पहिचानो ॥२७॥

युग युग से सतगुरु देव का कहना है कि सेवा ही मुक्ति का मूल है। अतएव सब की सेवा और चाकरी करो। इसी विधि से जीवन का अक्षय पद प्राप्त कर सकते हो ॥२८-२९॥

विश्राम साखी

जिस तरह पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है उसी तरह तप से चेतन के सारे दुख शांत हो जाते हैं ॥३०॥

इस सूक्ष्म भेद को नहीं जानने से दुख की चौरासी भोगना होती है। सतगुरु के इन शब्दों ने असर किया और वे सीधे सिंगा के हृदय में समा गये ॥३१॥

सिंगाजी बोले—"हे स्वामी, मैं तो कुछ भी नहीं जानता । तुम्हारे ही शब्दों को सत्य मानता हूँ । हे स्वामी देव मेरी रक्षा करो । और अब की मुझे अपनी शरण में रख लो ॥३२॥

मैं तो मूर्ख मतिहीन हूँ, "अजर" शब्द को मैं कैसे पहचान सकता हूँ । हे स्वामी आप "मुक्ति" के दाता हैं तथा आप सनाथ तथा अनाथ के दाता हैं ॥३३॥

गुरु के प्रताप से ध्रुव ने अटल पद पाया तथा गुरु के प्रताप से प्रह्लाद अमर बन कर छाया हुआ है । नामदेव और कबीर को भी गुरु की शरण लेनी पड़ी और न जाने कितनों को ही गुरु के प्रताप से मुक्ति मिली ॥३४॥

अब हे स्वामी मुझे दीक्षा दीजियेगा तथा सेवक समझ कर अपना बना लीजियेगा । आपके गुणों का मुझसे वर्णन नही हो सकता आप तो घट घट के सम्पूर्ण सतगुरु स्वामी हैं ॥३५॥

गुरु दीक्षा

सिंगाजी के ऐसे वचन सुन कर मनरंग स्वामी ने भी अपना हृदय खोल कर रख दिया । तथा कृपापूर्वक सिंगाजी को अपना उपदेश दिया और तब सिंगाजी ने भी मोह माया त्याग कर निर्गुण की शरण ले ली ॥३६॥

मनरंग स्वामी से उपदेश ले कर सिंगाजी भी अत्यंत प्रसन्न हुए । बोले मुझ अनाथ प्राणी को प्रभु ने निहाल कर दिया ॥३७॥

शब्द सुन कर उन्होंने साकी कही तथा अपने गुरु की बड़ाई की । बोले—तीनों लोकों में सतगुरु ही दाता है जिनकी कृपा से सम्पूर्ण जगत सुख पाता है ॥३८॥

सतगुरु देवताओं के देवता हैं और उनकी सेवा अजर अमर है । फिर मनरंग स्वामी बोले—"हे पुत्र, सुनो अब अपने घर की फिकर लो' ॥३९॥

मनरंग स्वामी ने समझा कर कहा कि—"हे भाई, अब अपने घर जा कर उसकी सुधि लो।" सिंगाजी बोले कि—"मैं तो अपना घर पा गया। अब तो मैं आपकी शरण में आ गया हूँ ॥४०॥

आप ही मेरे माता, पिता गुरु तथा देवता हैं। आपके बिना सारी सेवा झूठी है और समस्त माया का जाल है। कनक और कामिनी का सेवन तो अन्धे पुरुष ही करते हैं ॥४१॥

इस ठगोरी माया ने समस्त जगत को खाया है। औरों की तो क्या बात इसने स्वयं ब्रह्मा को नचाया है। यह समस्त कुल डुबोती है ॥४२॥

अब तो मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपको छोड़ कर मुझे और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब तो मुझे अपने चरणों के समीप रख लीजियेगा। सिंह की शरण छुड़ा कर सियार के मुँह में मत दीजियेगा ॥४३॥

माया के साथ में मैंने बहुत दुख पाये हैं। इसीलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ।" उसपर मनरंग स्वामी बोले—"हे, भाई, सुनो, बिना माया के भक्ति कैसे हो सकती है ॥४४॥

पूजा अर्चना करने के लिए ही यह माया मिली है और स्मरण करने के लिये यह जीभ दी है। माया के बिना परमार्थ नहीं होता जिस तरह कि वस्त्र बिना यह देह नग्न रहती है ॥४५॥

परमार्थ के लिए ही यह कावड़ की फेरी है। स्वयं रामानन्द ने कठिन भक्ति की थी। परमार्थ तो कबीर ने भी किया वह अपने वस्त्रों को बाजार में दे आये थे ॥४६॥

जब उन्होंने ऐसा एकचित्त होकर परमार्थ किया तभी उन्हें श्री रघुनाथ जी के दर्शन हुए। जो घर में रहता है वही सच्चा है और वही मन वचन से सच्ची सेवा कर सकता है।" मनरंग स्वामी कहते हैं कि "हे सिंगा, हमारे शब्दों को मान लो। घर जा कर सब की सेवा करो।" सिंगाजी ने भी लवलीन हो कर गुरु की बात मान ली और गुरु ने जो

कहा उसे पूरा करने का निश्चय किया ॥४७-४८॥

वे गुरु का वचन मान कर घर आये और उन्होंने कुटुम्ब सहित समस्त सुख पाया। उसके एक वर्ष बाद एक अनहोनी घटना घटी ॥४९॥

विश्राम साखी

भैंस का चमत्कार

अनहोनी, आकस्मिक घटना का भेद कोई नहीं जानता। भैंसों को चोर क्या ले गया मानों सिंगा पर भगवान ही रूठ गये हों ॥५०॥

सिंगाजी का पहला चमत्कार जो जगत में प्रसिद्ध हुआ उसे हृदय में स्वामी का स्मरण कर अब मैं कहता हूँ ॥५१॥

भैंसों को चुरा कर जैसे ही चोर ले गये गाँव के सब लोग उन्हें चारों ओर ढूँढने के लिये दौड़े। पाड़ा पाड़ी घर घर रेंकने लगे और चोर भैंसों को दूर से दूर भगा ले गये ॥५३॥

भैंसों के चोरी चले जाने से समस्त पारिवारिक जन उदास हो गये लेकिन सिंगाजी मन ही मन हर्षित होने लगे। घर के लोगों ने उन्हें डाँटा डपटा लेकिन सिंगा ने अपनी टेक नहीं छोड़ी ॥५४॥

दौड़ दौड़ कर सब लोग हार गये और सोचने लगे कि जीवन भर की कमाई मुफ्त में ही चली गई। नगर के सब लोग भैंसों को ढूँढने के लिये गये लेकिन सिंगाजी कहीं गये न आये ॥५५॥

सिंगा ने अन्दर की बात सब जान ली। लोग अपने अपने दरवाजों पर सिर पर हाथ लगा कर बैठ गये और कहने लगे कि हम कर्म के हीन हैं जिसकी जो माया थी उसने ले ली ॥५६॥

इस तरह दुखी होते कलपते जब दो दिन बीत गये तब सिंगाजी एक अनहोनी बात बोले। सिंगा बोले—"हे माँ, अब मेरी एक बात सुनो। दूध दुहने का बर्त्तन साफ कर लो तथा दूध दुहाने की तिपाई जमाओ ॥५७॥

भैंस दुहने के लिये पाड़ा पाड़ी को छोड़ दो और अब व्यर्थ दुख मत मनाओ। स्वयं गुरु नारायण स्वामी भैंसों को ढूँढने गये थे और वे चोरों का पीछा करके माल (भैंसों) को घर (बाड़े में) ले आये हैं" ॥५८॥

माँ ने कहा—'चुप रह रे शैतान, आज भैंसों को गये तीन दिन हो चुके हैं।' और माँ ने खीझ कर उसे गाली भी दी। वह भोली माँ उसकी बात को समझी नहीं ॥५९॥

और बोली—'अब भगवान सिर्फ तुम्हारे में ही रहा है और सब लोगों ने तो उसे बेच दिया है।' सुनकर सिंगाजी मन ही मन सोचने लगे कि सब की माँ ऐसी ही होती है ॥६०॥

कबीर की माँ ने भी कबीर को इसी तरह पुकारा था और नामदेव की माँ ने भी उसे गाली दी थी। इस तरह की कितनी बातों का वर्णन करूँ। भक्तों का तो सारे जगत ने ही विरोध किया है ॥६१॥

तब सिंगाजी ने एक बुद्धिमानी की। वे पाड़ा पाड़ी को छोड़ कर वहाँ ले गये जहाँ पर भैंसे बँधती थीं ॥६२॥

भैंसों और पाड़ों का मिलन हुआ और सिंगाजी बोले कि—'हे सतगुरु स्वामी, तुम धन्य हो। तुम्हारे बिना कौन निभा सकता है। मैं तो सदा से आपका सेवक हूँ पराया नहीं हूँ' ॥६३॥

जब भैंसों का दूध दुह कर घर में आया तभी सबके मन में विश्वास हुआ। सब लोग उन्हें साधु साधु करके पुकारने लगे। उन्होंने संत की बात रख ली ॥६४॥

माता और भाइयों ने जब से यह प्रत्यक्ष चमत्कार देखा तब से सिंगाजी ने वास्तविक महत्व प्राप्त कर लिया। सब कहने लगे कि जैसा ये कहें वैसा ही हमें करना चाहिये उनके कहने में ही हमारा कल्याण है ॥६५॥

स्वामी के मन और बल को बिरला ही समझ सकता है। खेमदास कहते हैं कि वे अगम को सुगम कर सकते हैं ॥६६॥

स्वामी की अपार महिमा है उन्होंने निर्गुण की बेल को सींचा है इसीसे वे बिना बाती और बिना तेल के ज्ञान का दीपक जलाते हैं ॥६७॥

ओंकारेश्वर यात्रा का चमत्कार

उसके बाद कुछ लोग मांधाता जाने के लिये आये और सिंगाजी से बोले—'हे स्वामी, चलिये। हम लोग मांधाता चलें। वहाँ पर आदि देव ओंकार बसते हैं' ॥६८॥

सिंगाजी निर्मल वाणी से बोले—'सब तीर्थों में पत्थर और पानी है। आदि ओंकार तो सबके हृदय में बसते हैं। सतगुरु के प्रताप से हमने तो यही समझा है' ॥६९॥

तब हरि केशव बोले—'आपने तो परमार्थ का मत प्रकाशित किया है। आप तो साक्षात् परमेश्वर के अंश हैं। लेकिन हमारे कार्य कैसे सिद्ध होंगे' ॥७०॥

सिंगाजी बोले कि 'अच्छा, तो आप लोग चलियेगा यदि सतगुरु बुलायेंगे तो पीछे से मैं भी अकेला आ जाऊँगा और नाँव पर हमारा मिलन होगा' ॥७१॥

लोगों ने कहा कि इनसे हठ मत करो और इनकी बात मान लो। इनसे तो चलने की आज्ञा ले लो इनकी बात को कौन समझ सकता है ॥७२॥

सब लोग घर आये और तीर्थ जाने का निश्चय किया। सब ने अपना अपना सामान संजोया और मांधाता जाने के लिये रवाना हुये ॥७३॥

तीसरे दिन वे मांधाता पहुँचे और वहाँ पर सिंगाजी की राह देखने लगे। वे नाव पर सवार हुये और बोले, देखो स्वामी अभी तक भी नहीं आये ॥७४॥

तब सिंगाजी ने ध्यान लगाया और एक क्षण में वहाँ पहुँच

गये। हरि केशव सहित सबने उन्हें वहाँ देखा तब ही स्वामी ने सामने आकर उन्हें पुकारा ॥७५॥

सिंगाजी स्वामी जहाज पर आये और बाल गोपाल सहित सबको उन्होंने जहाज पर चढ़ाया। सब मिल कर पार उतरे और वहाँ पर उन्होंने ओंकारेश्वर की पूजा की ॥७६॥

एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा के दिन वे वहाँ पर रहे। पाँच दिन उन्होंने वहाँ पर निवास किया और प्रतिपदा के दिन उन्होंने वहाँ से रवाना होने का निश्चय किया ॥७७॥

लोग बोले कि अब घर चलना चाहिये। ऐसी बात सभी ने कही। सिंगाजी ने कहा कि—'हे भाइया, तुम चलो। मैंने तुमसे कब नहीं कहा है ॥७८॥

मेरा तो तन मन सदा सर्वदा यहाँ और वहाँ गुरु के ही पास रहता है।' इस तरह उन्होंने सब लोगों से कहा और वे अन्तर्ध्यान हो गये ॥७९॥

तब स्वामी अपने घर आये और सब लोग वहीं छूट गये। लोग कहने लगे कि—'हे भगवान, स्वामी कहाँ चले गये। यह कैसा आश्चर्य हुआ' ॥८०॥

आते जाते उन्होंने किसी का साथ नहीं दिया। स्वामी की लीला को कौन समझ सकता है।' ऐसा कहते हुये जब वे घर आये तो वहाँ पर उन्होंने सिंगाजी के दर्शन किये ॥८१॥

उन्हें देखते ही सब दूर से ही दौड़े आये और पूछने लगे कि—'हे स्वामी आप कब आ गये?' स्वामी बोले कि—'इस बात को तो सतगुरु ही जानते हैं। मेरी बात को कौन मानेगा ॥८२॥

नामदेव और कबीर की बात भी लोगों ने नहीं मानी थी और गोरखनाथ से तो झगड़ा (वाद-विवाद) किया था। मुझ गरीब की कौन सुनता है। जैसे तैसे स्वामी निबाह रहे हैं' ॥८३॥

माँ ने कहा—'यह कहीं गया नहीं है। दस दिन से तो यहाँ घर में

बैठा है ।' सब लोगों ने सुना तो आश्चर्य किया और स्त्री पुरुषों ने उनका चरणामृत पान किया ।।८४।।

माँ ने जब ऐसा कहा तो सभी ने आश्चर्य किया और सभी ने यह साक्षी दी कि पाँच दिन तक तो वे हमारे साथ थे ।।८५।।

सम्पूर्ण जगत ने साक्षी दी लेकिन माँ ने उनकी बात नहीं मानी । लोगों ने कहा कि यद्यपि आते जाते समय तो हमारा साथ नहीं दिया लेकिन पूरे समय हमारे साथ अवश्य रहे ।।८६।।

सम्पूर्ण जगत ने आश्चर्य किया और बोले कि ऐसी बात तो वेद में भी नहीं सुनी । स्वामी की कला को धन्य है विरला ही इसका भेद समझ सकता है ।।८७।।

विश्राम साखी

दुष्ट ब्राह्मण की कथा

उसके पश्चात् दो ब्राह्मणों के मन में खराब बुद्धि उत्पन्न हुई और उन्होंने साधु समझ कर स्त्री माँगने का निश्चय किया । वे अपने घर से यह सोचकर चले कि यदि वह सच्चा भक्त होगा तो स्त्री नहीं रखेगा ।।८८।।

वे नगर में आकर ठहर गये और लोगों से पूछने लगे कि तुम्हारा स्वामी कहाँ पर रहता है । एक आदमी ने घर बता दिया तो दोनों ब्राह्मण वहाँ पहुँचे ।।८९।।

जब वे दोनों परदेशी ब्राह्मण दरवाज़े पर पहुँचे तो उनका भेद कोई नहीं जान सका । वे दुष्ट ब्राह्मण चुपचाप खड़े होकर बोले ।।९०।।

साद कहाँ पर है हमें बताओ । हम दोनों वहाँ चल कर जायेंगे । तब घर के लोग बोले कि साद सरस्वती के किनारे गये हुये हैं ।।९१।।

वहाँ वे जगल में रह कर बालकों को पढ़ाते हैं और गाँव में नहीं आते हैं । वहाँ पर अत्यन्त ही श्रेष्ठ सरस्वती का कुंड है जिसका पानी

उत्तर दिशा की ओर बहता है ॥९२॥

घर के लोगों ने कहा कि तुम वहाँ पर शीघ्रता से चले जाओ। इतना सुनकर दुष्ट उस मार्ग पर रवाना हो गये ॥९३॥

वे उस मार्ग पर रवाना होकर जब वहाँ पहुँचे तो वहाँ पर सारी सभा बैठी हुई थी। सिंगाजी बीच में बैठे हुये थे। उन्होंने दूर से आते हुये ब्राह्मणों को देखा ॥९४॥

सिंगाजी उनका कुम्हलाया हुआ मुँह तथा तेज हीन शरीर देख कर सारी बात समझ गये। उन्होंने ब्राह्मणों को बुला कर सम्मान दिया तथा पूछा कि आप जिस काम के लिये आये हैं वह आपने क्यों नहीं किया ॥९५॥

बोले कि—'वह सती स्त्री आपकी आज्ञा नहीं टालती और आप जो बात कहते उसकी अवहेलना नहीं करती। उस सत्यवती के चेहरे पर शिकन तक नहीं आती और वह अत्यन्त ही स्वागत सत्कार से आपकी सेवा करती" ॥९६॥

तब ब्राह्मण उठ कर सिंगाजी के चरणों में गिर गये और बोले कि हमसे गलती हुई हमें क्षमा कर दो। दोनों ब्राह्मण मनमें बहुत पछताये और सोचने लगे कि हमने बहुत बड़ा अपराध किया है ॥९७॥

हम दुष्ट और मति हीन हैं। भक्ति का मार्ग हमने नहीं पहचाना। तुम अन्तर्यामी तथा मुक्ति के दाता हो। हम तो अबोध बालक हैं। और आप हमारे पिता हैं ॥९८॥

ब्राह्मण लोगों को साद को प्रणाम करते देखकर सारी सभा में आश्चर्य छा गया और लोग सोचने लगे कि आखिर इन्होंने ऐसा क्या अपराध किया है जो ये स्वामी के चरणों में अपना मस्तक झुका रहे हैं ॥९९॥

सारी सभा स्वामी की ओर देखने लगी। स्वामी बोले कि यह कहने योग्य बात नहीं है। इन्ही ने मुझे परमार्थ का मार्ग बताया है। उसी को मैंने अपने हृदय में छिपा लिया ॥१००॥

इन्होंने मुझपर एक उपकार किया है मुझ जैसे संत को भी पंडिताई प्रदान की है। वैसे मुझसे क्या हो सकता है। वे संतों के परमार्थी, प्रेमी और स्नेही हैं ॥१०१॥

इतना कहकर सिंगाजी खड़े हो गये और उन्होंने दोनों ब्राह्मणों के हाथ पकड़ लिये। वे उन्हें लेकर घर आये। तथा अपनी बैठक में उनके लिये एक बड़ा सा बिस्तर बिछा दिया ॥१०२॥

फिर घर में आकर बोले कि—"ये हमारे बड़े मेहमान हैं अन्दर की बात तो ये ही जानते हैं।' उन्होंने उन्हें उस दिन रखकर प्रेम पूर्वक भोजन कराया तथा दूसरे दिन उन्हें विदा किया ॥१०३॥

जब ब्राह्मण चले गये तब सिंगाजी ने सारी बात कही। उधर ब्राह्मण बड़े हैरान हुये कि सिंगाजी सबको एक समान मानते हैं ॥१०४॥

स्वामी हैरान होकर गये सिंगाजी यह बात मन ही मन समझ गये। जिनकी सतगुरु रक्षा करते हैं उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ॥१०५॥

जिनकी सतगुरु रक्षा करते हैं उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। जिनके सिर पर निर्गुण का छत्र है उनका काल भी क्या बिगाड़ सकता है ॥१०६॥

विश्राम साखी

पिपल्या ग्राम आगमन तथा प्रभु दर्शन का चमत्कार

सिंगाजी मोह माया से अलिप्त रहकर निर्गुण के संग लवलीन रहते थे। माता पिता स्त्री पुत्र और भाइयों से उनकी कोई मोह ममता नहीं थी ॥१०७॥

घर में भैंसें और गायें थीं लेकिन उन्होंने अपने मुँह से कभी यह नहीं कहा कि ये मेरी हैं। वे बहुत दिनों तक आनन्द पूर्वक हरसूद में रहे। उसके पश्चात् वे पीपल्या चले गये ॥१०८॥

सिंगाजी जब पिपल्या गाँव में आये तो वहाँ के लोग बहुत प्रसन्न

हुये। वे बोले कि हमारे गाँव के भाग जग गये। आज हमारे यहाँ संध्या के समय लक्ष्मी ने प्रवेश किया है ॥१०९॥

सिंगाजी ने गाँव के बाहर अपने सामान को उतारा और दूर से गाँव को देखा। उनके सामान को दूर से ही देखकर गाँव के लोग उन्हें लेने के लिये पहुँचे ॥११०॥

उस गाँव में भिलालों की बस्ती थी जो कि भक्ति का मर्म नहीं जानते। सिंगाजी अपना सामान लेकर गाँव में आये और एक जगह पर अपना डेरा लगा दिया ॥१११॥

उस गाँव में डोंगरू हरजी नामक एक व्यक्ति रहते थे। जो कि जाति के भिलाला थे और उस गाँव के पटेल थे। वे सिंगाजी से बोले कि—जहाँ पर तुम्हारी इच्छा हो वहाँ पर अपना मकान बना लो ॥११२॥

सिंगाजी बोले कि हमें कोई महल की इच्छा नहीं है। अपनी छोटी सी झोपड़ी सहज ही बना लेंगे ॥११३॥

लिम्बाजी सिंगाजी के बड़े भाई थें। उन्होंने सिंगाजी को एक काम करने का आदेश दिया। वे अत्यन्त ही व्यग्रता एवं रोष से बोले कि तुम भैंसों के लिये एक अक्खर बनाओ ॥११४॥

वे सिंगाजी को इस काम के करने का आदेश देकर भैंसें चराने के लिये चले गये। तब सिंगाजी एक कुसला लेकर जमीन खोदने के लिये बैठे। तभी उनकी दृष्टि कुसले की आलती पर पड़ी ॥११५॥

उन्होंने देखा एक गिंडोला कीड़ा कुसले की आलती से कटकर दो टुकड़े हो गया है। उसे देखते ही उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई। वे बोले—मेरे जीवन को धिक्कार है, धिक्कार है। मैं महा पापी हूँ ॥११६॥

झाड़ जंगल काटकर हम जगह को साफ सुथरा बनाते हैं और कितने ही जीवों को मारकर हम अपना जीवन निर्वाह करते हैं। झूठ और प्रपंच करके हम व्यापार करते हैं और इस पापी शरीर से भगवान का भजन भी करते हैं ॥११७॥

दंड और पाखंड करके हम भिक्षा माँगते हैं और दया तथा आधीनता (लाचारी) किसी की नहीं देखते। चोरी और स्त्री पर निगाह रखते हैं और उसी के लिये सारे दाँव खेलते हैं ॥११८॥

ऐसा सोचकर वे अत्यन्त संतप्त हुये और उन्होंने अपने हाथ से कुसला पटक दिया। बोले—मेरे जीवन को धिक्कार है, धिक्कार है। मैं तो सब वस्तु छोड़कर ईश्वर का भजन करूँगा ॥११९॥

इतना कहकर वे घर के अन्दर गये और आसन बिछाकर उसपर सो गये। उन्होंने अपने हृदय में प्रभु का स्मरण किया और चादर ओढ़कर लम्बी तान लगाई ॥१२०॥

सोते सोते शाम हो गई, तब तक भाई भैंसें लेकर आ गया। वे भैंसों को यूँ ही खड़ा देखकर बहुत गुस्सा हुये और बोले कि—सिंगा ने पशु धन के लिये घर नहीं बनाया ॥१२१॥

उस दिन सिंगा ने उपवास किया और अत्यन्त उदास होकर भक्ति करते रहे। ऐसा करते करते चौथा पहर आया और उसी समय सिंगा स्वामी को किसी ने जगाया ॥१२२॥

सिंगाजी मन में चौंके जैसे किसी ने गाय को घेर लिया हो। फिर उन्होंने दूसरी अज्ञात पुकार सुनी जैसे उसके शब्दों से अमृत झर रहा था ॥१२३॥

सिंगाजी बोले कि यह पुकार मनुष्य की नहीं हैं जैसे कोई अज्ञात पुरुष आया है। वे उठकर दरवाजे पर आये और वहाँ पर उन्होंने एक अज्ञात पुरुष के दर्शन किये ॥१२४॥

तब सिंगा स्वामी ने मन को दृढ़ किया और द्वादशी के दिन नख से शिख तक उस अमृत पुरुष के दर्शन किये। वे कसा हुआ कच्छ पहिने हुये थे, उनके गले में स्फटिक की माला और हाथ में तुम्बा था ॥१२५॥

उनका छोटा कद और भरा हुआ शरीर था। तथा उनका श्याम वर्ण एवं कामदेव की तरह सुन्दर जगत् विख्यात स्वरूप था। उस

स्वरूप को देखकर सिंगा स्वामी ने उन्हें प्रणाम किया। तब-ही वे श्रीपति स्वामी बोले ॥१२६॥

माँगो, माँगो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ जो कुछ तुम्हारे मन में इच्छा हो वह माँग लो। सिंगाजी बोले कि—"मैं माँगना क्या जानूँ। मैं तो तुच्छ मति का बुद्धि से हीन हूँ" ॥१२७॥

सिगाजी बोले कि "मेरा सन्देह दूर कर दो, मैं तो आप समर्थ से यही माँगता हूँ। मुझे बार बार जन्म लेकर इस मनुष्य योनी में नहीं आना पड़े। मैं देह धारी भक्त नहीं कहाना चाहता" ॥१२८॥

सिंगा ने जो कुछ माँगा, भक्त वत्सल भगवान ने उन्हें वही दिया। उन्होंने सिंगा के मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया और बोले कि जाओ, आज से मैंने तुम्हें अभय पद दिया ॥१२९॥

"तुम भक्ति करके जगत से मुक्त होओ" ऐसे शब्द कहकर वे अन्तर्यामी भक्त वत्सल भगवान अन्तर्धान हो गये ॥१३०॥

उन्होंने तरने और तारने की गति तथा मति; (बुद्धि तथा मार्ग) बताया। तब स्वामी का भ्रम दूर हुआ और वे निःशंक होकर प्रभु में लवलीन हो नाचने लगे ॥१३१॥

कीर्त्तन करके निरन्तर नाचने लगे और अपने शरीर को नृत्य मुद्राओं के अनुकूल मोड़ने लगे। पाँच पचीस भक्त भी विह्वल होकर उस निर्गुण संत के संग नाचने लगे ॥१३२॥

मान बड़प्पन के मरते ही सिंगा को आनन्द हुआ और उनकी पचीसों वासनायें विधवा हो गईं तथा उनकी इच्छाओं रूपी पच्चीसों कन्याओं के गर्भ गल गये तब उनके शरीर में भगवान बस गये ॥१३३॥

विश्राम साखी

गौलियों का उत्पात

तब सिंगाजी भगवान के ध्यान में लग गये। वे लोक और वेद में भी नहीं अटके। उन्होंने गुरु के शब्दों को सिर आँखों पर लिया और

अमृत रस चखने लगे ।।१३४।।

उन्होंने साहब के प्रेम को पहचान लिया था अतएव वे निःसंकोच होकर निर्गुण वाणी का गान करते थे तथा दिव्य दृष्टि के सहारे आत्म ध्यान में लीन रहते थे ।।१३५।।

वे निर्गुण शब्द और सवालों का उच्चारण करते थे। तथा साईं की शरण में एक रस होकर खेलते थे। उन्होंने योग और युक्ति से आसन साध लिया था और अपने घर में निर्भय होकर रहते थे ।।१३६।।

इसी बीच डोंगरू हरजी नामक व्यक्ति ने जब इनसे शिक्षा ग्रहण की तो गौलियों की जाति इसे सहन नहीं कर सकी। वे रात-दिन उत्पात मचाने लगे लेकिन सिंगाजी शांति पूर्वक ईश्वर के ध्यान में लीन रहे ।।१३७।।

वे अकेले रह गये, उनके साथ कोई नहीं था और गौली पाँच पच्चीस मिलकर उत्पात मचाने लग गये। गौली कहने लगे कि इन्हें जाति में नहीं लेना चाहिये और जाति से बन्द कर अलग कर देना चाहिये ।।१३८।।

सबने ऐसा निश्चय किया तथा सबको कसम देकर इसकी सूचना दे दी गई। इसी बीच उन सबमें श्रेष्ठ छोटे जवाई ने पाँच सात जनों को समझाया कि ऐसा करना उचित नहीं है और वे ऐसा निश्चय कर तुरन्त ही सिंगाजी के पास पहुँचे और उन्होंने बताया कि गौली लोग उत्पात मचा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी यह विख्यात वाणी कही ।।१३९-१४०।।

उन्होंने कहा, "मैं अपने आदमी की रक्षा करूँगा तथा अपने अन्तर्मन से सब कार्य सिद्ध करूँगा।" उन्होंने सब गौलियों की बुरी सम्मति को बदल दिया और उनमें से प्रत्येक उन्हें चाहने लगा ।।१४१।।

उन्होंने मन ही मन उन्हें उपदेश दिया अपने मुख से एक भी शब्द निकलने नहीं दिया। सब गौली सिंगाजी के दर्शन कर रहे थे

लेकिन उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था ॥१४२॥

तब सभी गौली उठकर अपने घर चले गये। उन्होंने सोचा कि सत्गुरु प्रकट हो चुके हैं। सिंगाजी ने हमारे मन की बात समझ ली है। इसी से तो उन्होंने अपने मुँह से एक भी शब्द नहीं निकाला ॥१४३॥

सिंगाजी ने हमारे मन की बात जान ली। उन्होंने किसी से भी कुछ नहीं कहा। उन्होंने ऐसे अनर्थ को पलट दिया और हम सबकी रक्षा की। उन्होंने हम सबकी रक्षा की यह बात सब जगत जानता है सबको मालूम है कि सिंगाजी ऐसे ही समर्थ स्वामी हैं ॥१४४-१४५॥

सन्यासी का उत्पात

उसके बाद सिंगाजी की कुछ ऐसी मनःस्थिति हुई कि उनका मन लोक और वेद में भी नहीं रमता था। अगर कोई भली बुरी बात भी कह देता था तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे ॥१४६॥

वे निर्मोही बनकर निर्गुण की उपासना में लीन रहते थे। उन्हें मोह नहीं व्यापता था। ऐसे समय में एक सन्यासी आये और वे गाँव में एक जगह ठहर गये ॥१४७॥

एक दिन वे सिंगाजी के दरवाजे पर आये और उन्हें अनेकों बातें कहकर रिझाने लगे। बोले कि हे साद तुम तो बड़े महन्त कहलाते हो आज हमें दूध पिलाओ ॥१४८॥

स्वामी का मन प्रसन्न हो उठा और वे बोले—सारी सम्पत्ति तुम्हारी ही है। तीनों लोकों में तुम्हारी माया है जो कुछ बचता है वही हमारी जूठन है ॥१४९॥

तुम्हारी दासी दूध दुहने के लिये गई है। वह दूध लेकर आयेगी सो पावन करना। इतना सुनते ही सन्यासी अकुलाकर उठे और बोले अच्छा तो जहाँ भैंस है हम वहीं चलते हैं ॥१५०॥

इतना कहकर वे गाँव के बाहर आये तो वहाँ पर उन्होंने यशोदा

की तरह माँ के दर्शन किये। वह उन्हें फिफराड़ नदी के किनारे मिली तथा उसने अपने सिर पर का बेड़ा उतार कर रख दिया ॥१५१॥

सन्यासी ने कहा कि हे गवलन, हमें दूध पिलाओ। तुम तो बड़े सन्त की स्त्री कहलाती हो। माँ ने कहा कि हे गुसाईं, तुम दूध पीओ। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है ॥१५२॥

मैं तो अपना तन मन धन सब संतों पर न्योछावर करती हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो सो खाओ पीओ। तब अतिथि ने दूध पिया और माता से ये वचन कहे ॥१५३॥

हे माँ तुम्हें राम की दुहाई है लेकिन अब तुम अपनी कन्या को कौन सा दूध पिलाओगी। तब माँ ने खाली बर्त्तनों को अपने सिर पर रखा। भगवान की इच्छा को कौन समझ सकता है ॥१५४॥

खाली बर्त्तनों को सिर पर रखते ही वे दूध से भर उठे। माता ने सिर से बर्त्तनों को उतारा तो देखा, वे दूध से भरे थे ॥१५५॥

वह दूध लेकर घर को आई तो वहाँ पर उसकी कन्या बहुत बिलख बिलख कर रो रही थी। सिंगाजी ने कहा कि अपनी कन्या को दूध पिलाओ और अपनी रोती हुई बच्ची को गोदी में ले लो ॥१५६॥

स्त्री ने कहा कि वह मुझसे ली नहीं जाती। अतिथि ने मुझे राम की दुहाई दी है। उन्होंने मुझे अपनी बच्ची को दूध पिलाने से मना किया है और मैंने उनकी बात मान ली है ॥१५७॥

उन्होंने पाँच दिन तक कन्या को दूध नहीं पिलाया और बच्ची एक माह की हो गई। गाँव के लोगों को जब यह मालूम हुआ तो वे अतिथि के पास पहुँचे ॥१५८॥

तब अतिथि ने विनती करके माँ के चरण स्पर्श किये और बोला कि हे माँ, तुम कन्या को दूध पिलाओ। माँ ने कहा कि तुम व्यर्थ डरते हो। कन्या की रक्षा तो श्री रघुनाथ जी करते हैं ॥१५९॥

विश्राम साखी

अब सिंगाजी और भी आनन्द से रहने लगे। भगवान के द्वारा रक्षा करने के कारण कन्या का शरीर कुम्हलाया नहीं वरन् उसका रूप और भी निखर आया तथा वह लहलहाती हुई बढ़ने लगी तथा लोग यह सब देखकर साधु साधु कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥१६०-१६१॥

मढ़ी बनाने का विचार और एक जीव की हत्या तथा उसके पुनर्जन्म की कथा

साधु जन सदा आनन्द करते हैं। वे ईश्वर के भरोसे पर किसी से नहीं डरते। वे दिन रात राम की सेवा करते हैं और दूसरे देव को नहीं जानते। जो सदा आनन्द में मस्त रहते हैं वे ही ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सबसे प्रेम का सम्बन्ध रखते हैं ऐसे ही ज्ञानी पुरुष सत्य बोलते हैं ॥१६२-१६३॥

श्रेष्ठ पुरुष किसी से बुराई नहीं करता। कपटी को पास नहीं फटकने देता। अतिथि और अभ्यागत को पहचानता है। और हृदय को शुद्ध रखकर सबको अपना स्वामी मानता है ॥१६४॥

बहुत से व्यक्ति सिंगाजी के शिष्य हो गये और उनका पंथ चलने लगा। वे सत गुरु की आज्ञा का पालन करते थे और अपने जीवन को कृतार्थ करते थे ॥१६५॥

सिंगाजी जो कुछ भी कह देते थे वही बात पूरी होती थी। देश देश में उनकी कीर्त्ति फैलने लगी। गुरु मनरंग स्वामी के प्रताप से सिंगाजी अजपा का जाप जपने लगे ॥१६६॥

एक दिन शिष्यों ने विचार किया कि एक मढ़ी बनाना चाहिये। उन्होंने यह बात सिंगाजी से कही लेकिन सिंगाजी को यह विचार पसन्द नहीं आया ॥१६७॥

सिंगाजी ने कहा कि तुम किसके लिये मढ़ी बनाते हो। यहाँ तो बिना घड़े हुये घर की ऊपर छाया है। धरती का यहाँ गलीचा बिछा है और ऊपर से बिना डोर के आसमान की कनात तानी हुई है ॥१६८॥

शिष्यों ने कहा कि हे महाराज, देह के लिये कुछ तो छाया करनी होगी। सिंगाजी ने कहा कि हम नहीं जानते जैसा तुम्हारे मन में आये करो। हम कोई मढ़ी नहीं लगायेंगे। अब हमसे मत पूछना ॥१६९-१७०॥

तब सबने विचार कर मंदिर की नींव डालने का निश्चय किया। नींव खोदते देर नहीं लगी पर सिंगाजी सबसे अलिप्त रहे ॥१७१॥

जैसे ही नींव खोदी उसमें से एक जीव निकला वह कणु जाति का था। जो कि मजदूर के हाथ से घायल हो गया ॥१७२॥

तुरन्त ही यह बात सिंगाजी के पास पहुँची कि नींव के खोदने में एक जीव की हत्या हो गई। सुनते ही सिंगा स्वामी बहुत ही नाराज हुये ॥१७३॥

बोले हमने कहा तो तुमने हमारी बात नहीं मानी। व्यर्थ ही एक जीव की हत्या की। शिष्यों ने कहा कि हम तो आपके दरबार में बैठे हैं उसकी हत्या तो मजदूरों ने की ॥१७४॥

सुनते ही सिंगाजी ने नाराज होकर कहा कि तुमने हमारे पिता की हत्या कर दी। तुमने गुनाह किया है अतएव तुम्हें पाप लगेगा। हम तो घर नहीं बंधवायेंगे ॥१७५॥

शिष्यों ने कहा कि हे स्वामी, यह अपराध तो मजदूरों का है आप यह बात उनसे कहिये। सिंगाजी ने कहा कि तुम सच मानो हमारे लिये तो सब जीव एक समान हैं तुमने जीव नहीं मारा वरन परमेश्वर को ही चोट पहुँचाई है ॥१७६॥

मैंने जब से सतगुरु की बात सुनी है मेरे लिये विट्ठल और बलि एक समान है। मैं दिन रात उन्हीं की सेवा करता हूँ और सब घटों में आत्म देव का दर्शन करता हूँ ॥१७७॥

तब सब शिष्य सामने आकर बोले कि हे स्वामी, हमारी गुनाह

माफ कीजिये और उस गये हुये प्राणी की सुध लीजियेगा ॥१७८॥

उस गये हुये प्राणी ने कहाँ पर वास किया, किस काया में किस घट में और किस स्थान पर देह धारण किया है ॥१७९॥

सबके मुँह से पश्चाताप की ऐसी बात सुनकर सिंगाजी प्रसन्न हुये और बोले कि इस बात को हम क्या समझ सकते हैं। जिसकी गति को वही पहचान सकता है ॥१८०॥

सिंगाजी ने ऐसा कहकर अपने ऊपर कोई भार नहीं लिया और घट बढ़ को ईश्वर पर छोड़ दिया। लेकिन जब शिष्यों ने "परचा" माँगा तो सिंगाजी ने श्रीरंग स्वामी का स्मरण किया ॥१८१-१८२॥

वे सोचने लगे कि यह कलियुग की कैसी उल्टी रीत है कि शिष्य गुरु से "परचा" (प्रमाण) माँगता है। इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ और वे भगवान का स्मरण करने लगे ॥१८३॥

सिंगाजी ने कहा कि हे भाइयो—"परचा" तो श्री रघुनाथ जी ही पूरा कर सकते हैं उन्हीं की कृपा से बताता हूँ। 'छालपा' नामक एक गाँव है। वहीं पर इस प्राणी ने जन्म लिया है ॥१८४॥

वहाँ पर राजपूत जाति का एक घर है। उसका सुन्दर नाम है उसी के यहाँ प्रथम बालक के रूप में इसने जन्म धारण किया है ॥१८५॥

आज से नौ माह के बाद आज की ही तिथि और आज के ही दिन यह "कणा" उसके यहाँ पुत्र के रूप में जन्म लेगा ॥१८६॥

तब सब ने सोचा कि स्वामी से यह बात कागज पर लिखाकर रख लेनी चाहिये। तब स्वामी ने यह बात कागज पर लिखकर दे दी ॥१८७॥

सिंगाजी ने कहा कि परचा तो ईश्वर ही पूरा करेगा लेकिन लोगों को धैर्य्य नहीं था। वे नित्य वहाँ जाकर पूछ ताछ करने लगे ॥१८८॥

ऐसा करते करते नौ माह बीत गये और ठीक समय पर उस घर में बालक का जन्म हुआ। तब सबके मन में विश्वास हुआ और वे दौड़कर सिंगाजी के चरणों में प्रणाम करने लगे ॥१८९॥

सब धन्य धन्य कहने लगे और बोले कि स्वामी के सिवाय ऐसा परचा कौन पूरा कर सकता है। सबने प्रसन्न होकर प्रसाद बाँटा और बोले कि हे स्वामी तुम अगम और अगाध हो। तुमने अंतरंग की बात जान ली और उत्पत्ति तथा प्रलय दोनों की बात बता दी ॥१६०-१६१॥

विश्राम साखी

खेमदास कहते हैं कि हे स्वामी तुमने उत्पत्ति और प्रलय दोनों का भेद जाना है और भाव तथा कुभाव दोनों को पहचानते हो। भाव और भक्ति के कारण सिंगाजी समर्थ पुरुष हुये हैं। आज उनकी महिमा का वर्णन कर मेरा जीवन सफल हुआ है। ऐसा खेमदास गाते हैं। १६२-१६३ ॥

मांधाता यात्रा एवं सन्यासी का गर्व मर्दन

खेमदास कहते हैं कि उपरोक्त परचा देने के बाद सिंगाजी ने अपनी समस्त शिष्य मंडली को बुलाया। उनमें कालू नाम का एक आदमी जो कि जाति का नहाल था अच्छी पखावज बजाता था सो सब शिष्य मंडली को लेकर सिंगाजी मांधाता पहुँचे ॥ १६४-१६५ ॥

जब शिष्यों की टोली सजी तो नगर के और भी लोग उमड़ आये। योगी, यती और सन्यासी सब सिंगाजी के साथ थे। वे सब सिंगाजी के साथ मांधाता पहुँचे और सबने अपनी अलग अलग धूनी रमाई ॥ १६६-१६७ ॥

चारों ओर लोगों के आसन लगे थे और बीच में सिंगाजी आसन लगा कर हरि के ध्यान में लीन थे। उन्हें कोई नहीं पहिचान पा रहा था ॥ १६८ ॥

जब सिंगाजी के मांधाता आने की बात चारों ओर फैली तो अनेकों साथी व स्नेही जन उनकी व्यवस्था के लिये आये तथा शिष्य सम्प्रदाय दर्शनों के लिये उमड़ने लगा ॥ १६६ ॥

जो भी लोग दर्शनों के लिये आते थे वे पान खोपरा और नारियल लाते थे। शक्कर और बताशे का प्रसाद बँट रहा था तथा लौंग इलायची खारक और बताशे भी बँट रहे थे कुछ लोग नगदी रुपया पैसा भी चढ़ा रहे थे पर सिंगा स्वामी उनको हाथ नहीं लगाते थे ॥२००-२०१॥

सिंगाजी कह रहे थे कि कोई मेरा नाम मत लो। राम की सेवा करो। मैं तो सदा से राम का सेवक हूँ और यह सब उसी की माया है ॥ २०२॥

टोकरों से प्रसाद बँटने लगा। कोई भजन गा रहे थे तो कोई पुस्तकों का पाठ कर रहे थे। सिंगाजी के आस पास कितने ही भजनी और उदासी एकत्रित हो गये ॥ २०३ ॥

जब सिंगाजी की महिमा बढ़ने लगी तो संन्यासी और वैरागियों ने उत्पात मचाना शुरू कर दिया। वे कहने लगे कि यह गृहस्थ और गौली "साद" कहलाने लगा है। और अपने आप ही पुजाने लगा है ॥ २०४ ॥

इसने सब भेषों की मर्यादा को नष्ट किया है अतएव इसका ज्ञान देखना चाहिये। ऐसा सोच कर महन्तों ने चार वैरागियों को भेजा और वे सिंगाजी के अखाड़े में पहुँचे ॥ २०५ ॥

जब वैरागी सिंगाजी के अखाड़े में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ अनेकों पगड़ी बन्द लोगों की सभा जमी है उन्होंने सिंगाजी के बारे में पूछा और उनसे जा कर कहा कि—हे सरदार, चलिये। आपको महन्त जी ने बुलाया है ॥ २०६ ॥

सिंगाजी ने शीतल विनम्र वाणी से कहा—"महंत जो चाहते हैं उसे हम जानते हैं लेकिन वे जैसा चाहते हैं वैसा हमसे नहीं हो सकता। मैं तो अनाथ हूँ और राम की शरण में रहता हूँ ॥ २०७ ॥

महन्त जी से जा कर कह देना कि हम तो कुछ नहीं जानते तब बात कैसे हो सकती है।" तब वैरागियों ने जा कर महन्त जी से यह बात कही तो महन्त जी को मन में बहुत गुस्सा आया। वे यह कह कर

अपने आसन से उठे कि इसकी परीक्षा (परचा) लेना ही चाहिये। या तो मैं पगड़ी बाँधूँगा या उसी को अपना भेष दे दूँगा ॥ २०८-२०९ ॥

वे आतुर हो कर सिंगा जी के अखाड़े पर पहुँचे। और सिंगा, सिंगा कह कर उन्हें पुकारने लगे। उनकी दृष्टि से क्रोध टपक रहा था और वे कड़ाई से बोल रहे थे ॥ २१० ॥

वे हल्के और भारी शब्दों का उच्चारण करते हुए सिंगाजी को बतियाने का प्रयत्न कर रहे थे और कह रहे थे कि तुम "साद" कहलाते हो तो अभी एक गैबी (चमत्कारी) घोड़ा दिखाओ। उसे गैबी दाना खिलाओ और गैबी पानी पिला कर दिखाओ। तभी हमारे मन में धैर्य हो सकता है और तभी हम मानेगें कि तुम्हारी बातें सच हैं और तुम्हें ही कबीर और रामानन्द कहने लगेंगे ॥ २११-२१२ ॥

सिंगाजी ने कहा--"मैं तो उनके पैरों की धूल हूँ। कहाँ कबीर और कहाँ रामानन्द। ऐसा पद मुझे मत दीजियेगा मैं तो अनाथ हूँ मुझे ये नाम शोभा नहीं देते ॥ २१३ ॥

सिंगाजी ने कहा कि यदि तुम बुरा नही मानो तो एक बात कहता हूँ। तुम तो समर्थ हो और सब कुछ कर सकते हो। इसलिए तुम घोड़ा ले आओ मैं दाना ले आऊँगा। सारा विवाद छोड़ दो ॥ २१४-२१५ ॥

मेरी बात सच मानिये। अगर आपके मन में हिचक नहीं है तो आप गैबी घोड़ा ले आइये मैं उसे गैबी पानी पिलाऊँगा मेरे पास तंग तोबरा और घोड़े का सारा साज है। यदि तुम सहयोग दो तो मैं आज भी जीत सकता हूँ। मुझे तुम्हारा भरोसा है। असुर के हाथ से एक दिन तुम्हीं ने जीव को छुड़ाया था। सो हे रघुराई आज भी कृपा कीजिये ॥ २१६-२१७ ॥

आज तो आपने हमें दर्शन दे कर हमारा जन्म सफल कर दिया। तुम भक्त वत्सल हो दीन दयाल हो और तुमने अपना दर्शन दे कर हमें निहाल कर दिया है। पहले अपना परचा दीजियेगा तब दूसरे का

परचा लीजिये। तब कपूत और सपूत का भेद मालुम हो जायगा और जो जैसा आदमी होगा वैसा प्रतीत हो जायगा ॥ २१८-२१६ ॥

सुनते ही जो बैरागी आतुरता से आया था वह मन ही मन खिसियाते हुए मुस्कराने लगा। उसने सिंगाजी को अपने से समर्थ पाया अतएव उनके चरणों में प्रणाम कर अपनी राह लौट गया। सिंगाजी अपनी जगह पर स्थिर बैठे रहे। उन्होंने आसन लगाया और भगवान के ध्यान में लीन हो गये ॥ २२०-२२१ ॥

सिंगाजी प्रभु का स्मरण कर अजपा का जप करने लगे। वे हद छोड़ कर बेहद में लीन हो गये जहाँ पुण्य और पाप दोनों नहीं होते ॥ २२२ ॥

सन्यासी का उत्पात और फकीर का ज्ञान

उसके बाद एक सन्यासी उन्मत्त होकर उत्पात मचाने लगा। वह मर्म की बात नहीं जानता था और झूठी बातें फैलाता रहता था ॥ २२३ ॥

एक दिन वह उतावला हो कर एक मुगल के पास पहुँचा और बोला कि देखो—यहाँ पर एक साद आया है। वह माथे पर पगड़ी बाँधता है और किसी की नहीं सुनता। जाति का गौली है इसी से अभिमानी हो उठा है ॥ २२४-२२५ ॥

वह ताल पखावज और झाँझ बजाता है और बैठे पुजाता है। उसके पास नारियल खोपरा और अपार द्रव्य चढ़ता है और उसने मृग की नाभि की तरह संसार को मोह लिया है ॥२२६-२२७ ॥

इस तरह की हजारों सच्ची झूठी बातें मुगल से कहीं तो सब बातें सुन कर मुगल ने कहा कि वह कोई अजर अमर तुम्हारा पिता होगा। तुम फकीर नहीं हो, खुदा को भी नहीं मानते फिर हमारे पास क्यों आये हो। पहले तुम अपना परचा दो फिर उस आदमी को हमारे पास बुलाना। ॥ २२८-२२६ ॥

मुगल के पास सन्यासी के फरियाद करने की बात लोगों को मालूम हुई और यह भी मालूम हुआ कि मुगल के घट में अविनाशी प्रगट हुए हैं। सिंगाजी ने भी यह सब सुना ॥ २३० ॥

इतने में बड़े महन्त को भी यह बात मालुम हुई कि एक सन्यासी ने उत्पात मचा रखा है। और एक मुगल ने उसे रोक रखा है। लोगों ने बताया कि यहाँ पर एक साद आया है उसी की उसने शिकायत की है। यह सुन कर महन्त ने नाराज हो गाली दे कर कहा कि उस मुंडे हुए सन्यासी ने मूर्खता की है ॥ २३१-२३२ ॥

उन्होंने कहा कि सन्यासी ने हमसे कुछ भी नहीं बताया और बिना पूछे यह काम किया है ऐसा कह कर वे मुगल के पास पहुँचे और उससे शीतल वाणी में बोले कि तुम खुदा के प्यारे हो अतएव इस सन्यासी को छोड़ दो। यह भक्ति का मर्म नहीं जानता और वेदों की बात करता है ॥ २३३-२३४ ॥

मुगल ने कहा कि हे गुसाईं सुनो, इसने एक साद की बदनामी की है। यह बोला कि यहाँ पर एक साद आये हैं उसकी परीक्षा लो। जब इन्होंने ऐसी बात कही तो हमारे मन में शंका हुई और हमने इन्हें यहाँ रोक लिया है ॥ २३५-२३६ ॥

नामदेव तो जाति का रंगरेज था लेकिन उसने गाय को जीवित करके वापिस घर भेज दिया था। जो साद और सती से परचा माँगता है उसे नीचे देखना होता है ॥२३७॥

हम तो मानते हैं कि साहब सबके भीतर है ऐसा कोई नहीं है जिसके भीतर सत्य साहब न हो। जो ऊँच और नीच का भेदभाव मानता है वह स्वर्ग को छोड़कर नरक में जाता है ॥२३८॥

ऐसी बुद्धिमानी की बातें समझाकर मुगल ने सन्यासी को छोड़ दिया और वह खुश होकर अपने आसन पर लौट आया ॥२३९॥

मैं कहाँ तक कथा कहूँ। कथा का कोई अन्त और पार नहीं है। सन्यासी के जाने के बाद मुगल अपने आप सिंगाजी के पास प्रसाद

लेकर पहुँचा और बोला कि हे सिंगाजी, इस साईं की भेंट भी स्वीकार करो। तुम्हारी शिकायत हमारे पास आई थी और एक सन्यासी ने तुम्हारी बहुत ही चुगली खाई थी ॥२४०-२४१॥

सिंगाजी ने कहा कि हे साईं, तुम धन्य हो। तुम्हारे सिवाय ऐसा कौन कर सकता है। जो कोई तुम्हारी शरण में जायेगा वह भगवान की कृपा से सुख पायेगा ॥२४२॥

हमें तो कुछ भी नहीं मालूम कि कौन क्या कहता है। तुम्हारे बिना कौन ऐसा सुधार कर सकता है। पराये आदमी ने काम सुधारा और सिंगाजी पर कोई आँच नहीं आई। स्वामी ने सोचा कि ये सब राम की माया है। कहाँ तक मैं उसकी बड़ाई करूँ ॥२४३-२४४॥

खेमदास कहते हैं कि मेरी एक जबान है। मैं कहाँ तक स्तुति करूँ। यदि मेरे रोम रोम में वाणी होती तो भी गुणों का पार नहीं पाया जा सकता था। निर्गुण के तो अपार गुण हैं खेमदास कहाँ तक उनका वर्णन कर सकता है ॥२४५-२४६॥

खेमदास कहाँ तक गुण गान करे और कहाँ तक जाप जपे। यह धरती तीनों लोक में ऊपर है सो सबको दीखती है इसी तरह सिंगाजी अजपा के जाप में लय लीन रहते हैं पर बात सब जानते हैं ॥२४७-२४८॥

सन्यासी को सिंगाजी का उपदेश

दूसरे दिन वह संन्यासी सिंगाजी के दर्शन करने आया और बोला कि साधु जन के स्वभाव को धन्य है जो भली बुरी बातों को मन में नहीं लाते ॥२४६॥

सिंगाजी ने कहा कि हे गुसाईं सुनो, हम तो सेवक हैं तुम साईं हो। कोई दाव करता है और कोई उपाय करता है पर प्रेम भक्ति को बिरला ही पाता है ॥२५०॥

एक ही वृक्ष की यह सारी छाया है जिसके घट में जैसा है वह वैसा

रस चखता है। साखी और शब्द सब सीखते और गाते हैं पर निर्गुण शब्द को बिरले जन ही पाते हैं ॥२५१॥

जिस शब्द से यह सारी सृष्टि रची है जमीन और आसमान, पुरुष और नारी बने हैं, जीव, जानवर घास और दाना तथा चन्द्रमा सूर्य पवन और पानी बने हैं, बावन अक्षर तथा नौ अंक बने हैं उसी शब्द में गुरु और शिष्य भी हैं। पीढ़ी प्रणाली छाया और धूप वर्षा और विवरण सब कुछ राम के बनाये हैं ॥२५२-२५३॥

सिंगाजी कहने लगे कि हमें तो ऐसा ही प्रतीत होता है। तुम तो बड़े महन्त हो तुमसे क्या कह सकता हूँ। मैं तो बालक हूँ तुम्हारे सन्मुख मैं कैसे सयाना हो सकता हूँ और क्या समझा सकता हूँ ॥२५४॥

सिंगाजी ने ऐसी शीतल वाणी का बखान किया तब सन्यासी अपने स्थान पर जाने के लिये रवाना हुआ। उसने सिंगाजी की बहुत स्तुति की तथा बोला कि ऐसी भक्ति भाग्यवान को ही मिलती है। बोला कि तुमने अतिथि को आसन दिया तुम हमारे श्रेष्ठ बड़े भाई हो उसने सिंगा स्वामी की बहुत सराहना की। इस तरह गुरु मनरंग स्वामी का पुण्य और प्रताप फलने फूलने लगा ॥२५५-२५६॥

सिंगाजी का पिपल्या आगमन तथा नाले में गंगा का दर्शन

उसके बाद सिंगाजी पिपल्या ग्राम में आये तो गाँव वालों को बहुत सुख हुआ। और सिंगाजी एक जगह अपने आसन पर बैठ कर एक चित्त से भक्ति करने लगे ॥२५७॥

नगर से उत्तर दिशा की ओर एक नाला था, उसी में स्वामी स्नान करते थे। उसका पानी पूर्व की ओर बहता था इसी से सिंगाजी ने उसका नाम "बाण गंगा" रख दिया। उसमें उन्होंने अपना अंश रख दिया जिससे लोगों के दुख दूर होने लगे और लोग उसमें स्नान कर कृतार्थ होने लगे ॥२५८-२५९॥

सिंगाजी सबको समान भाव से देखते थे इससे दुष्ट लोगों को

उनकी बात समझ में नहीं आती थी। वे कहने लगे कि देखो सिंगाजी आखिर गौली का गौली रहा। पास के नाले में स्नान करता है ॥२६०॥

यह सुन कर सिंगाजी मन ही मन हँसते थे। कहते थे कि हम तो आलसी है दूर नहीं जाना चाहते, हमारा तीर्थ तो हमारे मन में है और वह यहीं बसता है ॥२६१॥

जिसके मन में दुविधा नहीं है उसके सब तीरथ यहीं बसते हैं। जो संतोषी जन हैं उनके मन में ही सब तीर्थ रहते हैं इसीसे मैं सच कहता हूँ यह नाला ही मेरे लिये तो बाण-गंगा है ॥२६२-२६३॥

जो कोई इसमें सच्चे मन से स्नान करेगा उसके सब रोग व पीड़ा दूर हो जावेंगे और वह मुक्ति पा जायेगा ॥२६४॥

सिंगाजी ऐसे ही सन्त हो चुके हैं जिनका नाम युग युग तक अमर रहेगा। कुंभावत ने यह परचरी कही थी। संत और महन्त जिस राह से चलते गये हैं उसी राह को सिंगाजी ने पहचान लिया है ॥२६५-२६६॥

सिंगाजी ने राम का स्मरण किया था और सन्तों की संगति की थी। वे मनरंग के शिष्य और जगन्नाथ के नाती थे। सिंगाजी ने कभी अपना स्वार्थ नहीं किया और राम की राह में सिर दिया था ॥२६७॥

वे अनहद की कमान चढ़ा कर राम के दल में सम्मिलित हुये थे और उन्होंने ज्ञान के घोड़े पर चढ़ कर पाँचों शत्रुओं को वश में कर लिया था ॥२६८॥

दो गाँवों से निमन्त्रण और दोनो गाँव वालों को एक साथ दर्शन

उसके बाद स्वामी को दो गाँवों से रास के लिये बुलावा आया। दोनों गाँवों में एक ही दिन और एक ही तिथि को काम था। स्वामी दोनों जगह का निमन्त्रण पाकर प्रसन्न हुये ॥२६९-२७०॥

जो लोग निमन्त्रण लेकर आये थे वे एक दूसरे का मुँह देखने

लगे । और विचार करने लगे कि अब स्वामी किसके यहाँ जाते हैं । स्वामी दोनों के मन की बात समझ गये और बोले कि तुम जाकर अपना काम करो इस बार तो हमारा आना नहीं होगा ।।२७१-२७२।।

दोनों के यहाँ एक ही दिन काम है अगर एक के यहाँ जाता हूँ तो दूसरे के मन में भेद उत्पन्न होता है । सेवक लोगों ने कहा कि ऐसा मत कीजिये । हम हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं कि हमारे यहाँ पधार कर हमें दर्शन अवश्य दीजियेगा । स्वामी ने कहा कि तुम लोग अपने घर आओ अन्तर्यामी सारे काम सिद्ध करेगा ।।२७३-२७४।।

अगर तुम्हारा मन सिद्ध होगा तो भगवान प्रसन्न होकर सब कार्य सिद्ध करेंगे । सुनते ही सेवक अपने घर चले गये और स्वामी अपने आसन पर ध्यान में निमग्न हो गये ।।२७५।।

सेवक लोग जाकर अपने काम में लग गये और स्वामी ने श्रीराम का स्मरण किया । बोले हे भगवान तुम भक्त वत्सल हो, तुम्हीं ने भक्तों के सब काम सिद्ध किये हैं । तुम चाहो तो स्थूल और सूक्ष्म देह धारण कर सकते हो और सब घटों में प्रकाश कर सकते हो तुम्हारे मर्म को कोई नहीं समझ सकता । तुम्हारी अपरम्पार माया का पार नहीं पाया जा सकता ।।२७६-२७७।।

जब स्वामी ने ऐसी स्तुति करके कहा कि हे प्रभो, तुम्हारे बिना कौन इस कार्य को सिद्ध कर सकता है तो अन्तर्यामी प्रभु प्रकट हुये और उन्होंने स्वामी के अनेक रूप कर दिये उनका एक रूप तो घर रहा और दूसरा रूप दोनों गाँवों में प्रकट हो गया ।।२७८-२७६।।

स्वामी दोनों गाँवों के रास में सम्मिलित हुये और उन्होंने सबको दर्शन दिये । दोनों गाँवों ने स्वामी का बहुत ही सम्मान किया उनके चरण पखारे चरणामृत लिया और उन्हें सिर झुकाकर साष्टांग दंड-वत् प्रणाम किया और बोले हे सिंगा स्वामी, आपको धन्य है आपने हमें घर बैठे दर्शन देकर कृतार्थ किया ।।२८०-२८१।।

स्वामी ने कहा कि तुम्हारी भावना को धन्य है । जैसे वृक्ष में वैसा

ही फल लगता है। जो लोग मन, वचन, कर्म से सच्ची सेवा करते हैं उनका प्रयत्न वृथा नहीं जाता ॥२८२॥

उन्होंने लम्बी पटसाल में जाजम बिछा कर स्वामी को बैठाया तथा सब मिल कर आधी रात तक चर्चा करते रहे फिर चौथे पहर प्रसाद बाँटा ॥२८३॥

सारी रात सब चर्चा करने में निमग्न रहे लेकिन कर्त्ता की करनी को कोई नहीं समझ सका। प्रसाद लेते ही जब स्वामी अन्तर्ध्यान हो गये तो सारी सभा को सन्देह हुआ ॥२८४॥

स्वामी के लोप होते ही सारी सभा स्तंभित रह गई और सब एक दूसरे को ऊँची नीची दृष्टि से देखने लगे। कहने लगे कि किसी ने स्वामी से कोई कड़ी बात कह दी होगी। सभा के सारे लोग बोले कि हमने तो एक शब्द नहीं कहा। अगर कहा हो तो हमें राम की दुहाई है। दोनों गाँवों में ऐसी ही घटना घटी पर स्वामी की लीला को कोई नहीं समझ सका ॥२८५-२८६॥

तब दो दो आदमी उन्हें खोजने के लिये दौड़ाये। उन्होंने स्वामी के यहाँ जाकर उनके पाँव पकड़ कर कहा कि हे स्वामी यह आपने क्या किया। आप तो यहाँ बैठे हैं आपने हमें बड़ा धोका दिया। वे इतनी बात कह ही रहे थे कि दूसरे गाँव के भी लोग उन्हें खोजते हुये वहाँ आ गये ॥२८७-२८८॥

जब दोनों दल वालों ने अपनी अपनी बात कही तो सब आश्चर्य चकित रह गये। दोनों दल के लोग कह रहे थे कि ये रात को हमारे यहाँ आये थे पर घर के लोगों को यह भेद समझ में नहीं आ रहा था ॥२८९॥

घर वालों ने कहा कि उन्होंने सारी रात यहीं रहकर प्रभु का स्मरण किया है। ऐसा सुनकर जो लेने के लिये आये थे वे आश्चर्य चकित रह गये और स्वामी के चरणों पर लोट कर प्रणाम करने लगे ॥२९०-२९१॥

बोले हम अपराधी जन कुछ भी नहीं जानते। हमारे तो चर्म चक्षु हैं हम आपको किस तरह पहचान सकते हैं। तब सिंगाजी ने कहा कि मैंने नहीं, भगवान ने ही तुम्हें दर्शन दिये हैं तुम मेरी नहीं भगवान की ही बड़ाई गाओ। आज स्वयं उन्होंने ही तुम्हारे यहाँ प्रकट होकर तुम्हारे पर कृपा की है और तुम्हारे सारे कार्य सिद्ध किये हैं ॥२६२-२६३॥

कार्य सिद्ध करने के लिये भगवान ने कई रूप धारण किये हैं। उन्होंने कभी गोप लीला की तो कभी भक्तों का दुख दूर करने के लिये असुरों का नाश किया। वे घट घट में निवास करते हैं। उन्हें कोई बिरला नर ही पहिचान सकता है ॥२६४-२६५॥

परिनिर्वाण की कथा

सिंगाजी ने ऐसे अनेकों परचे दिये। पर चर्म चक्षु वाला जगत् उन्हें पहचान नहीं सका। माया रूपी सगुण के उपासकों को "ब्रह्मज्ञान" की बात समझ में नहीं आती थी ॥२६६-२६७॥

जिन्हें ब्रह्मज्ञान का आभास नहीं है ऐसे लोग स्वामी की बात नहीं मानते थे और उनकी मजाक उड़ाते थे ॥२६८॥

लेकिन सारा जगत जानता है कि कलि में सिंगाजी साक्षात कृष्ण का अवतार हुये हैं। उनके पाँवों में पद्म था और वे गौर वर्ण के थे। तथा उनका विशाल शरीर था ॥२६९॥

वे दिन रात भगवान के ध्यान में लीन रहते थे और उनके मुख से सदा "राम ही राम" निकलता रहता था। उनके मुख से निकलने वाले शब्द अजर अमर तथा बेदाग थे तथा सबके घट में समा जाते थे ॥३००॥

एक समय स्वामी के मन में विचार आया कि इस जगत के सारे मोह माया को त्याग कर अपने परिवार से जा मिलना चाहिये और अभय पद को प्राप्त करना चाहिये ॥३०१॥

सिंगाजी ने एक पक्ष पहिले ऐसी बात सोची इतने में मनरंग स्वामी का सन्देशा आया कि यदि श्रावण सुदी पूर्णिमा को देह छूटे तो उत्तम हो। यह बात उन्होंने एक शिष्य के हाथ एक पत्र में लिख कर भेजी ॥२०२-२०३॥

गुरु के पास से ऐसा सन्देशा पाकर सिंगाजी को अपार आनन्द हुआ। उन्होंने गुरु के शब्दों को सिर झुकाकर प्रणाम करके मान लिया ॥२०४॥

श्रावण सुदी नवमी के दिन सिंगाजी ने यह विचार किया कि गुरु के शब्दों को मान कर पूर्णिमा के पहिले ही यह कार्य कर लेना चाहिये ॥२०५॥

सिंगाजी गुरु और गोपाल का हृदय में स्मरण कर आसन लगा कर बैठ गये। वे अपने मुख से अमृत वाणी का उच्चारण कर रहे थे तथा प्रेम और भक्ति में अत्यन्त ही आनन्द से लीन थे ॥२०६॥

स्वामी अपने मन्दिर में उत्तर की ओर मुँह करके आसन पर बैठे थे और ताल पखावज तथा झांझ बज रहे थे ॥२०७॥

स्वामी अपने दोनों हाथ जोड़ कर बैठे थे तथा सगुण और निर्गुण उपासक सब उनके आसपास एकत्रित होकर बैठे थे। उनके शरीर से एक अपूर्व आभा निकल रही थी ॥२०८॥

किसी को भी मालूम नहीं हुआ कि स्वामी आज देह क्यों त्याग रहे हैं। इसी बीच वे अन्तर्ध्यान हो गये और ज्योति में ज्योति समा गई ॥२०९॥

घर के स्त्री पुरुष, कुटुम्ब, और परिवार के लोग रो रहे थे। शिष्यों की भी एक बहुत बड़ी मंडली एकत्रित थी। नगर के लोग बहुत पश्चाताप कर रहे थे और बिलख बिलख कर रो रहे थे ॥२१०॥

छोटे छोटे बालक भी रो रहे थे और स्त्रियाँ सिर धुनकर कह रही थीं कि हे जगदीश, आज तुम हम से क्यों रूठ गये ॥२११॥

स्त्रियाँ रो रो कर कह रही थीं कि तुम्हारे कालू भोलू सन्दू और

दीपा जैसे छोटे छोटे चार बच्चे हैं। हे भगवान यह क्या हो गया ॥ ३१२ ॥

उनका नारायण नामक शिष्य बहुत रो रहा था और किसना बाई की आँखों में आँसू नहीं आ रहे थे। रंगू नामक उनके काका की लड़की बाल छोड़ कर और शीश पटक कर रो रही थी ॥ ३१३ ॥

सब विलाप कर के रो रहे थे और किसी के मन में धीरज नहीं बँध रहा था। इस तरह स्वामी ने मोक्ष पाया और वे निर्वाण के चौथे पद पर पहुँच गये ॥ ३१४ ॥

स्वामी की मुक्ति हुई। उन्होंने सहज ही शून्य पद प्राप्त किया और ऐसे अचल स्थान पर पहुँचे जहाँ अनन्त सुखों का भंडार है ॥ ३१५ ॥

विश्राम

स्वामी ने ऐसे पद को प्राप्त किया जहाँ अनन्त सुख है और जहाँ पर अगम जन भी वास करते हैं इस तरह स्वामी विदेह हो गये ॥ ३१६ ॥

सिंगाजी ने समस्त मोह माया त्याग कर अपनी देह को त्याग दिया और ऐसे अमर पद को प्राप्त किया जहाँ समस्त भूमंडल ही शरीर बन जाता है ॥ ३१७ ॥

मूँदी परगणा के पिपल्या गाँव में स्वामी ने अपनी देह त्यागी। उस समय वहाँ पर अनेकों सन्त और साधु एकत्रित थे। उन्होंने पूर्व दिशा में उनकी समाधि बनाई ॥ ३१८ ॥

वे उन्हें गाते बजाते ले गये। चाँवल और चन्दन से उनकी पूजा की। तथा समाधि में उन्हें रख कर दोनों हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया ॥ ३१९ ॥

स्वामी की समाधि पर एकत्रित हो कर समस्त साधों ने यह विनती की कि हे स्वामी आप तो अमर पद को प्राप्त हुये अब हम पर निगाह

रखना और हमारे सब कार्यों को सिद्ध करना ॥ ३२० ॥

ऐसा कह कर सब घर आये पर स्वामी के गुणों को कोई नहीं पा सका। सब के मन में एक बात समाई कि स्वामी का जैसा स्थान था वैसा कोई काम करना चाहिये ॥ ३२१ ॥

इतने में सिंगाजी के नारायण नामक शिष्य ने कहा कि शरद ऋतु में उनकी स्मृति में एक मेला भरना चाहिये। ऐसा करने से गुरु के शब्दों का भी पालन होगा तथा मेला भरने से परमार्थ भी होगा ॥ ३२२ ॥

सबने एक मत से इस विचार का समर्थन किया और कहा कि गुरु के शब्द खाली नहीं जाना चाहिये। जिसके कार्य को वही निभाता है सो इस कार्य को भी वे ही निभायेंगे ॥ ३२३ ॥

निर्वाण के पश्चात् ब्राह्मण को दर्शन

उसके बाद एक आश्चर्यजनक घटना घटी। निर्वाण के तीन माह पश्चात् सिगाजी ने एक ब्राह्मण को दर्शन दिये ॥३२४॥

ब्राह्मण सिंगाजी के दर्शन कर आश्चर्य चकित रह गया। लेकिन प्रत्यक्ष अपनी आँखों के सन्मुख उन्हें देख कर कुछ नहीं कह सका ॥ ३२५ ॥

सूर्य एक या दो घड़ी चढ़ा होगा तब उन्होंने ब्राह्मण से बातें की। उन्होंने सब के कुशल समाचार पूछे। वे हँस हँस कर बातें कर रहे थे। ब्राह्मण के पास भैंसें थी सो वे बीच बीच में विनोद भी करते जाते थे। उनकी बातें चारों दिशाओं में गूँज रही थीं लेकिन ब्राह्मण को कुछ भी सूझ नहीं रहा था ॥ ३२६-३२७ ॥

वहाँ पर गुप्त शब्द गूँज रहे थे। ब्राह्मण उन्हें समझना चाहता था इतने में स्वामी अन्तर्ध्यान हो गये और ब्राह्मण मन ही मन आश्चर्य करता रह गया ॥ ३२८ ॥

गुप्त पुरुष गुप्त स्थान में समा गये और ब्राह्मण मन ही मन पछ-

ताने लगा। कहने लगा कि मैं अपराधी हूँ मैंने चमत्कारी पुरुष को नहीं पहचाना। वह बहुत पछताने लगा कि मैं निगुरा हूँ मैंने गुरु को नहीं पहचाना। मेरी बुद्धि को तो स्वामी ने ही हर ली थी नहीं तो मैं उन्हें प्रणाम तो करता ॥ ३२९-३३० ॥

उसने अपनी भैंसों को वहीं छोड़ दिया और वह गाँव में पहुँचा तथा गाँव के पटेल से उसने कहा कि आज मुझे साद के दर्शन हुए हैं ॥ ३३१ ॥

पटेल ने कहा कि तुम्हें कौन से साद ने दर्शन दिये हैं हमें सच बताओ। ब्राह्मण ने कहा कि मुझे पिपल्या वाले सिंगा स्वामी ने दर्शन दिये हैं जिनका अधिकार सारे निमाड़ खंड पर है ॥ ३३२ ॥

लोगों ने पूछा कि यह बात कब की है सिंगाजी का तो निर्वाण हुये तीन माह बीत चुके। तुमको उन्होंने कब दर्शन दिये ॥३३३॥

ब्राह्मण ने कहा कि यह अभी अभी इसी घड़ी की बात है। उनके सिर पर चादर और हाथ में लकड़ी थी। उन्होंने दो घड़ी मुझसे चर्चा की पर मैं तो अपनी सुध बुध भूल गया ॥३३४॥

मैंने स्वामी से चर्चा की। मैं ज्यों ज्यों इस बात की याद करता हूँ मेरा हृदय उमंग से भर जाता है। मेरे सम्मुख साक्षात् स्वामी खड़े थे पर मेरे मुँह से शब्द तक नहीं निकल रहे थे ॥३३५॥

मैं जो बात कह रहा हूँ उसे सच मानो। स्वामी के तेज के समक्ष मैं सचमुच लुभा गया था। मैंने स्वामी के साथ दो घड़ी समय बिताया है। मैं आज के सुख का वर्णन नहीं कर सकता ॥३३६॥

आज की कला का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसे लग रहा था जैसे सूर्य धरती पर उतर आया हो। यदि आप लोग साथ चलें तो मैं वह जगह बता सकता हूँ जहाँ पर मैंने स्वामी के दर्शन किये ॥३३७॥

लोग कहने लगे कि इस ब्राह्मण को धन्य है और वे प्रसाद लेकर उसके साथ चलने लगे। जहाँ पर ब्राह्मण को सिंगाजी के दर्शन हुये थे वहाँ पर गाँव भर के लोग प्रसाद लेकर पहुँच गये ॥३३८॥

वहाँ पहुँच कर लोगों ने देखा कि वहाँ पर स्वामी के चरणों के चिन्ह अंकित थे। तुरन्त ही लोगों ने उनकी परिक्रमा की। ब्राह्मण ने कहा कि यहीं पर खड़े होकर स्वामी ने मुझसे दो घड़ी चर्चा की थी ॥३३९॥

बहुत से लोग ब्राह्मण के चरण स्पर्श करने लगे और उसे धन्य धन्य कहने लगे। सब लोग उसी बात की चर्चा कर रहे थे और जहाँ पर स्वामी खड़े थे वहाँ की धूलि में लोटने लगे थे ॥३४०॥

विश्राम

सब लोग उस धूलि में लोट कर प्रसाद बाँट रहे थे तथा उस साद की चर्चा कर रहे थे जिनका ज्ञान अगाध है ॥३४१॥

जब से ब्राह्मण को दर्शन हुये उसका लक्ष्य सिंगाजी की ओर लग गया और वह निर्गुण वाणी बोलने लगा ॥३४२॥

यह चरचा पिपल्या ग्राम में पहुँची कि एक ब्राह्मण को स्वामी के दर्शन हुये हैं "श्याम विप्र" उसका नाम है और उसे जहाँ दर्शन हुये वह "छिरवाँ" गाँव है ॥३४३॥

उस बात को जिसने भी सुना किसी ने उसे माना किसी ने नहीं माना। कोई कोई बोले कि ये सब झूठी बाते हैं। कहाँ है साद और किसे दर्शन दिये ? ॥३४४॥

अपनी अपनी बात सब कहते थे उस आदमी की बात को कोई नहीं मानता था सिर्फ जसोदा माँ ने उस पर विश्वास किया और कोई उसे समझ नहीं सका ॥३४५॥

गुमे हुये बालक की सिंगाजी द्वारा रक्षा

इसी बीच एक और अचंभा हुआ। एक गुमा हुआ बालक स्वामी की समाधि पर रहा और स्वामी ने उसे प्रसाद देकर उसकी रक्षा की ॥३४६॥

वह बालक पाँच बरस का था जो स्वामी के पास निडर होकर रहा था। माता पिता रो रोकर उसे ढूँढ रहे थे और सोच रहे थे कि गुमा हुआ बालक कहाँ मिलेगा। माता पिता बहुत दुखी थे कि ईश्वर ने हमारे बच्चे को हमसे क्यों अलग कर दिया ॥३४७-३४८॥

खोजते खोजते पाँच दिन बीत गये। लोग कहने लगे कि बालक तो हाथ से गया। अगर वह नहीं मिला तो उसके नाम से बालकों को भोजन करा देना चाहिये। भगवान ने उसके भाग्य में यही लिखा था। ऐसा करते एक पक्ष बीत गया इसी बीच एक अनहोनी घटना घटी ॥३४९-३५०॥

कोई कहने लगा कि उसके माता पिता ऐसे ही हैं उसे सियार कुत्ते खा गये होंगे या वह किसी नदी नाले में डूब गया होगा। किसी को भी पता नहीं था कि बालक स्वामी की समाधि पर खेल रहा है ॥३५१॥

लेकिन कोई भी वहाँ नहीं जा रहा था सब सिर पकड़ कर रो रहे थे और बालक के मिलने की आशा छोड़ चुके थे ॥३५२॥

एक दिन सिगा स्वामी ने बालक से कहा कि चल, मैं तुझे तेरे माता पिता के पास ले चलता हूँ। बालक बोला कि मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। मैंने यहाँ बहुत सुख पाया है ॥३५३॥

मेरे घर सदा रूखी रोटी मिलती है और घी तथा खिचड़ी के तो मैंने सपने में भी दर्शन नहीं किये। मैं दूध और दही कहाँ पा सकूँगा। शक्कर खोपरा तो मुझे यहीं खाने को मिल रहा है। खारक खोपरा और चबेना इन चीजों को तो मैंने इस जन्म में देखा तक नहीं था। मेरा मन तो यहाँ बहुत सुख पा रहा है यदि आप मुझे घर भेजेंगे तो मैं बहुत रोऊँगा ॥३५४-३५५॥

फिर बालक ने कहा कि यदि आप मेरे साथ चलो तो मैं घर जा सकता हूँ। यह सुनकर स्वामी बहुत खुश हुए और बोले कि भगवान को धन्य है वे गद्‌गद होकर हँसने लगे। बोले—इसमें

भगवान प्रगट हुए हैं और उन्होंने विचार किया कि इसे इसके माता पिता से मिला देना चाहिये ।। ३५६-३५७ ।।

पास में एक गाँव था उसका नाम "बोरखेड़ा" था । वहाँ पर एक गली से उसकी माँ निकली तो सिंगाजी ने उस बालक को ले जाकर उसके सामने खड़ा कर दिया ।। ३५८ ।।

गली के कोने पर अपने बच्चे को खड़ा देख कर माँ रास्ता चलना भूल गई और स्तब्ध खड़ी रह गई और अपने मन में बहुत डरी ।। ३५९ ।।

लेकिन जब बच्चे ने माँ माँ कह कर पुकारा तो माँ के मन में धैर्य्य बँधा और उसे "ओ मेरे बच्चे, ओ मेरे बच्चे" तू कहाँ रहा ऐसा कह कर गोदी में उठा लिया ।। ३६० ।।

वह उस पर न्योछावर हो कर उसका मुख चूमती थी और कह रही थी कि हे बच्चे तूने बहुत दुख पाया और रो रोकर उसे कंठ से लगा रही थी ।। ३६१ ।।

माँ कह रही थी कि भगवान ने ही मुझे मेरे बच्चे को ला कर दिया है । बालक कह रहा था कि हे माँ, मैंने तो बहुत सुख भोगा है । स्वामी ने मुझे बहुत लाड़ लड़ाया है ।। ३६२ ।।

माँ ने पूछा कौन से स्वामी हैं ? तू कहाँ रहा ? बालक ने कहा— कि हे माँ देखो, स्वामी तो सामने खड़े हैं ।। ३६३ ।।

उनकी लम्बी धोती है और वे चादर ओढ़े हैं । उनके पाँव में खड़ाऊँ है और हाथ में लकड़ी है । लेकिन माता की दृष्टि में स्वामी नहीं दिखाई दे रहे थे । वे अपना रूप छिपा रहे थे ।। ३६४ ।।

माँ से जब पुत्र मिल गया तो स्वामी वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गये । बालक को अपनी माँ से मिला कर स्वामी अन्तर्ध्यान हो गये ।। ३६५ ।।

स्वामी को जाते हुए देख कर बालक बिलख बिलख कर रोने लगा तब माँ ने बच्चे को समझाया और उसे अपनी गोद में ले कर घर का रास्ता लिया ।। ३६६ ।।

जब बालक को लेकर माँ घर आई तो समूचे घर में आनन्द छा गया और बधाइयाँ आने लगीं। लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि दरजी का गुमा हुआ बालक कैसे मिल गया ॥ ३६७ ॥

नगर के लोग पूछने के लिए आने लगे और बालक को देख कर आश्चर्य करने लगे। पूछने लगे कि हे बालक, तू किसके यहाँ रहा? बालक बोला कि मैं स्वामी के यहाँ रहा ॥ ३६८ ॥

सब लोग यही बात पूछते थे कि हे बच्चे तू किनके साथ रहा? बालक कहता था कि मैं बाबा के साथ रहा जिनका नाम सिंगा स्वामी है ॥ ३६९ ॥

उन्होंने मुझे घी और खिचड़ी खिलाई और कंठ से लगा कर रखा। वह मुझे दूध भात और दही खिलाते थे तथा भाँति भाँति का चबेना देते थे ॥ ३७० ॥

वे मुझे नदी का पानी पिलाते थे और स्वयं घड़ी घड़ी में पानी भरकर लाते थे। बालक ने कहा कि वे मुझे एक घड़ी भी छोड़ कर कहीं नहीं जाते थे ॥ ३७१ ॥

स्वामी कहीं भी जाते आते नहीं थे और मैं जो माँगता था वही देते थे। स्वामी ने मुझे ऐसा ही सुख दिया है ॥ ३७२ ॥

विश्राम

स्वामी ने सदा सिर पर रह कर बालक को अपने साथ रखा और भक्तवत्सल ने उसके मस्तक पर हाथ रख कर उसकी रक्षा की। जिस बालक के सिर पर स्वामी का हाथ हो उसका जीवन धन्य है। जिस पर स्वामी की कृपा थी उसे ही स्वामी ने दर्शन दे कर कृतार्थ किया ॥ ३७३-३७४ ॥

चम्हार को दर्शन और समाधि का पुनर्निर्माण

एक बार एक चम्हार स्वामी की समाधि के पास से जा रहा था

स्वामी ने उसे बुला कर दर्शन दिये ॥ ३७५ ॥

स्वामी का निर्वाण हुए बहुत मास बीत चुके थे तब की यह बात है। चम्हार ने दौड़ कर उनके चरण स्पर्श किये और अपने जन्म को सफल माना ॥ ३७६ ॥

चम्हार ने अत्यन्त ही विनम्रता से स्वामी के अधीन होकर कहा कि मेरा शरीर आज पवित्र हो गया। स्वामी ने एक पहर तक चर्चा की पर वह उनके समक्ष दृष्टि तक नहीं उठा सका ॥ ३७७ ॥

स्वामी लगातार बातें करते जा रहे थे पर चम्हार को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे ॥३७८॥

फिर स्वामी ने कहा कि मेरी बात को किसी ने नहीं समझा। मैंने कहा था कि मुझे जल का दाग देना पर इन्होंने अपनी मन मानी की। तथा मुझे समाधि में आड़ा लिटा दिया ॥३७९॥

अब उनसे जाकर कहना कि वे समाधि को खुदवाये तथा उसमें मुझे बैठे हुये आसन से रखे। चम्हार ने कहा कि तुम ठहरो, मैं उन्हें अभी बुलाकर लाता हूँ सो आप ही ने उन्हें सब बातें समझाकर कह देना ॥३८०॥

चम्हार चार कदम गया होगा कि स्वामी अन्तर्ध्यान हो गये। चम्हार ने वापिस जाकर वहाँ देखा तो स्वामी वहाँ कहीं पर भी दिखाई नहीं दिये ॥३८१॥

चम्हार मन में आश्चर्य करने लगा कि कहीं मैंने सपना तो नहीं देखा है। लोग मेरी बात का विश्वास नहीं करेंगे ॥३८२॥

वह हँसता हँसता घर पहुँचा तथा उसने सकुचाते हुये यह बात स्त्री से कही। स्त्री ने कहा कि जसोदा माता सिंगाजी की पत्नी है जो कुछ आपने देखा है वह उनसे जाकर कहो ॥३८३॥

चम्हार ने उनके यहाँ जाकर कहा कि हे सब सादों मेरी बात सुनो। मैंने आज स्वामी के दर्शन किये हैं। उन्होंने मुझसे एक पहर तक बात की। श्री रघुनाथ जी ही इसके साक्षी हैं ॥३८४॥

उन्होंने मुझसे कहा है कि मेरी समाधि को खोदकर मुझे बाहर निकालना तथा मुझे बैठे हुये आसन से समाधि में रखना। मेरी बात सच मानिये ॥३८५॥

चम्हार की बात को किसी ने नहीं माना। बोले कि यह चम्हार हमें उपदेश देता है और उसकी बात को हँसी हँसी में उड़ा दिया ॥३८६॥

चम्हार ने अपने घर आकर सोचा कि जो कुछ मैंने देखा ऐसी बात कहने की नहीं रहती। मैंने अपने हाथ से अपनी इज्जत गँवाई है ॥३८७॥

उसके दो दिन पश्चात् एक आश्चर्यजनक सपना हुआ कोई सो रहा था कोई जाग रहा था इतने में स्वामी प्रकट हुये ॥३८८॥

पहले उन्होंने अपनी पत्नी को जगाया फिर अपने शिष्य नारायण को जगाकर कहा कि—चम्हार की बात को तुम कोई नहीं मान रहे हो। तुम्हें घमंड हो गया है और अपने मन की चला रहे हो। मैंने बहुत से संदेशे भेजे लेकिन तुम्हारे मन एक भी नहीं भाया ॥३८९-३९०॥

इतना कहकर स्वामी अन्तर्धान हो गये। तब सबके मन में संशय हुआ। स्वामी की बात सुनकर वे मन ही मन पछताने लगे। मन का घाव मन ही जानता था ॥३९१॥

विश्राम

मन में संशय हो जाने से सबको चिन्ता हुई और सोचने लगे कि स्वामी ने जो कहा है वैसा अगर नहीं किया तो न जाने क्या होगा। नारायण शिष्य के मन में स्वामी के शब्द घाव की तरह चुभने लगे और वह सोचने लगा कि अब भी यदि स्वामी की बात नहीं मानी तो क्षण में प्रलय हो जायगा ॥३९२-३९३॥

ऐसा सोचते सुबह हो गई। स्वामी की बात मन से हटती ही नहीं थी। इतने दिन से बात नहीं मानी यह बात बाण की तरह मन में चुभती रही ॥३९४॥

नारायण शिष्य ने माँ से कहा कि स्वामी ने जो बात कही है उसे सच मानो। उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं करूँगा। सब मिलकर मजदूर करो और मेरे साथ चलो ॥३६५॥

माँ ने कहा कि हे भाइयो, मैं आज सच बात बताती हूँ स्वामी ने मुझे भी यह बताया है। वे अन्तर्यामी हैं तथा उनकी बात सदा सुखदाई है। उनकी बात मान लीजिये और उन्होंने जैसा कहा है वैसा अवश्य कीजिये। साद की बात को कौन समझ सकता है ॥३६६-३६७॥

अपने को तो उन्होंने चर्म चक्षु दिये हैं। सेवक तो सेवा करना ही जानते हैं। अखिल ब्रह्मांड को कौन पहचान सकता है। मैंने आज सपने में उनके जिस निर्मल स्वरूप का दर्शन किया है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥३६८॥

उस त्रिलोचन की बात को कौन समझ सकता है। वह प्रेम का स्वरूप रखकर पास रहता है तथा बालक बनकर गायें भैंसें चराता है फिर भी वसुदेव और देवकी उन्हें पहचान नहीं पाते। जिस माँ ने उसे दूध पिलाया वह भी ऐसे पुरुष का मर्म नहीं जानती। बाद में योगी यती और संत तथा समझदार सब पछताते हैं ॥३६९-४००॥

फिर उस गरीब की कौन सी बात है जिसके साथ स्वयं राम जी रहे हैं। ऐसी बात जब माँ ने कही तो नारायण शिष्य ने भी उसे सही सही मान लिया ॥४०१॥

यह बात सुनते ही तुरन्त कारीगरों को बुलाया और बँधी हुई समाधि को खुदवाया तो उसमें से स्वामी की अखंड देह ज्यों की त्यों निकली। देह को बाहर निकाला और उसे स्नान कराया गया। छः मास बाद उसे निकाला गया था फिर भी केश नख और रोमावलि ज्यों के त्यों निकले ॥४०२-४०३॥

समूचे नगर के लोग उन्हें देखने के लिये आये। गाँव और दूसरे गाँव के लोग भी उमड़ पड़े। जो भी उनके दर्शन करता था धन्य धन्य कहता था और उनके चरण स्पर्श करता था ॥४०४॥

छोटे बड़े हजारों आदमियों का वहाँ दरबार लगा था। तीसरे पहर तक उन्हें बाहर रखा फिर अन्तिम पहर में उन्हें समाधि दी गई ॥४०५॥

स्नान कराकर उन्हें आसन दिया तथा उनके चरण पखार कर चरणामृत लिया। पहले उन्हें आड़ा लिटाया था अब उन्हें उत्तर की ओर मुँह करके बैठा हुआ आसन दिया गया ॥४०६॥

सब लोग धन्य धन्य कहने लगे कि इतने दिनों तक सिंगाजी की देह अक्षत रही। उनकी पुण्य कमाई है ऐसा जगत और भक्त लोग कहते हुये उनकी बड़ाई कर रहे थे ॥४०७॥

जिन पर राम का स्नेह होता है उनकी ही नख शिख और सारी देह इतने दिनों तक सुरक्षित रह सकती है। चारों ओर उनके दर्शन करके आनन्द छाया हुआ था और सारा समाज उनकी जै जै कार कर रहा था ॥४०८॥

सब उनकी प्रशंसा कर रहे थे प्रसाद बँट रहा था और चारों ओर आनन्द तथा बधाइयाँ दी जा रही थीं ॥४०९॥

फिर उन्हें अत्यन्त ही सावधानी से समाधि में बैठाया गया और उस पर पक्का चबूतरा बनाया गया। उस कोठरी की तरह सुरक्षित समाधि में आज भी स्वामी सहज समाधि लगाकर बैठे हुये हैं ॥४१०-४११॥

विश्राम

अक्षर की महिमा

साद का स्वरूप सहज है। हर्ष और शोक उन्हें नहीं हैं। जिनके लिये जीवन और मृत्यु समान है वही निर्भय पद पाते हैं ॥४१२॥

भक्त की राह निराली है। वह योग और आसन करता है तथा पवन भक्षण करके भी रह सकता है। माला और मुद्रा के बहुत से भेद हैं तथा नागा और मुनि बहुत डींग मारते हैं लेकिन जिस बात से भगवान मिलते हैं वह तो एक ही अक्षर है ॥४१३-४१४॥

योगी और जंगम से भी बड़े बड़े लोग भ्रम में भटक रहे हैं। मुक्ति का मूल एक अक्षर है उसको कोई बिरला ही जानता है ।।४१५।।

उस अगम अक्षर का कोई पार नहीं है। उसी का सबमें प्रकाश है। बावन अक्षर और नौ अंकों में उसी का निवास है ।।४१६।।

उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता और उसे अलग नहीं किया जा सकता। क्या चंपा और क्या बेल दोनों में सुगन्ध रहती है तेल और फूल अलग अलग कहाँ रहे दोनों मिलकर ही तो सुगंध बनती है ।।४१७।।

सीप और सागर में एक ही शब्द और एक ही बात रहती है। स्वाति का बूँद भी एक ही है उसी का अनेक जमाव है ।।४१८।।

सब बात की एक बात यह है कि प्रेम और भक्ति के बिना मुक्ति नहीं होती। स्वामी प्रेम के अवतार हो गये इसी से उन्हें अक्षय पद और सुख मिला ।।४१९।।

स्वामी की सुगन्ध सब देशों में फैली है यह दास कहाँ तक उनकी कथा कह सकता है। कथा कहकर उनका पार नहीं पाया जा सकता ।।४२०।।

सिंगाजी ने अनेकों परचे दिये उनकी कथा कहाँ तक विस्तार से कहूँ। जैसी मेरी भावना और भक्ति थी उससे मैंने सिंगाजी की कुछ अलभ्य कथायें कहीं ।।४२१।।

थोड़ी सी कथा का भी रस मीठा होता है। जो हरी का स्मरण करता है वही बड़ा है। मुझपर स्वामी की इतनी कृपा हुई जिससे मैंने ये अनेकों कथायें कही हैं ।।४२२।।

मैं मूर्ख और कम बुद्धि का हूँ। अक्षर का भी ज्ञान मुझे नहीं है सतगुरु ने कृपा की इसीसे अपनी बुद्धि से मैंने इसका वर्णन किया है ।।४२३।।

उन्होंने मुझे एक शब्द सुनाया था उसी के प्रताप से इन पदों की मैंने रचना की हैं। खेमदास कहते हैं कि हे भाइयों सुनो उसी शब्द

के प्रताप से यह सब मैंने कहा है ।।४२४।।

मैं सिंगा स्वामी की यह परचरी सुनाकर सब संतों को प्रणाम करता हूँ। स्वामी ने बहुत से परचे दिये उनमें से मैंने कुछ कहे हैं ।।४२५।।

विश्राम

कुये का जल जिसने पिया है वह संत को क्या समझ सकता है। हरि के गुण अपार हैं। मैं तो डर डर कर उनका वर्णन कर रहा हूँ। मैं तो पाषाण की तरह पड़ा हूँ जिसमें प्रेम नहीं होता ।।४२६-४२७।।

सिंगा स्वामी की परचरी सम्पूर्ण हुई। खेमदास जैसे साधारण जन ने इसे गाया है। मैं समय असमय की बात नहीं जानता। सतगुरु और सन्तों की महिमा तो सदा ही बनी रहती है ।।४२८।।

मैं मूर्ख हूँ और आँखों से भी अन्धा होकर मार्ग भूल गया था। सतगुरु स्वामी ने ज्ञान की लकड़ी हाथ में देकर मुझपर बड़ी कृपा की है ।।४२९।।

उन्होंने बाँहें पकड़ कर मुझे मार्ग बताया है तथा सघन वन में से सीधे मार्ग पर लाये है। उन्होंने मुझे अनेकों बार मार्ग दिखाया है ।।४३०।।

वे मुझे सीधे मार्ग पर लाये हैं और उन्होंने मुझे चौरासी योनी से छुड़ा लिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि सतगुरु के बिना मुक्ति नहीं होती ।।४३१।।

यह संवत् १७४८ की बात है जब सतगुरु ने ऐसी अमृत वाणी कही थी। उन्होंने समदर्शी होकर मुझे दर्शन दिये थे। उनके सारे शरीर में चन्दन लगा था उनका गोरा शरीर था और जैसे केशर से भीगे हो ऐसे शीतल वाणी में वे बोल रहे थे। जब उन्होंने मुझसे बात की तब तो उन्होंने मेरी सुध बुध सबको हर लिया था ।।४३२-४३३।।

उन्होंने जो कुछ भी कहा वह सब मैंने बता दिया है। स्वामी ने अपने मन में कुछ भी नहीं रखा। आदि से अन्त तक सारी बातें

कहीं। उन्होंने कहा कि तेरे भाग्य से तुझे दर्शन हुये हैं। मैं तुझे एक बात बता देता हूँ कि मेरा ही नाम सिंगाजी है ॥४३४-४३५॥

ये शब्द स्वामी ने कहे थे सो मैंने उन्हें हृदय में रख लिया। उन्होंने जो कुछ कहा उसे मैंने हृदय में रखा और उसी के प्रताप से सिंगाजी की यह परचरी कही है ॥४३६॥

सिंगा स्वामी की जसोदा नामक पत्नी थी। वह भी बहुत भक्त थी। निमाड़ खंड में ऐसे सिंगा स्वामी हुये हैं उन्होंने लवलीन होकर राम का गुणगान किया है ॥४३७॥

विश्राम

इस तन से मैंने इस बीज का बखान किया है। उन्हीं की संगति से मैंने इसे लिखा है वे प्रेम के भंडार थे ॥४३८॥

संत के घर सदा सौभाग्य है और सन्त के घर सदा आनन्द रहता है। वहाँ प्रतिदिन सदा मंगल आरती होती है और पल पल प्रेम बढ़ता रहता है ॥४३९॥

सन्त की महिमा अनन्त है जिसकी महिमा हरी ने भी गाई है। खेमदास तो एक क्षुद्र जीव है जो कि मन्दमति और अज्ञानी है ॥४४०॥

संत जिस घर मेहमान आते हैं उस घर को बैकुंठ समझिये और समझिये कि वहाँ भगवान बसते हैं ॥४४१॥

जहाँ साद है वही स्वामी है और जहाँ साद हैं वहीं देव हैं। खेमदास ऐसे सब सादों पर बिना भेद भाव के न्यौछावर है ॥४४२॥

सिंगाजी की परचरी समाप्त हुई। खेमदास जैसे साधारण जन ने इसे कहा है संवत् १७५१। हाल संवत् १८७६। सावन वद १। शुक्रवार उस दिन गोवर्धन दास ब्राह्मण ने इसे लिखा। जैसा लिखा इसमें मेरा दोष नहीं है ॥

सिंगाजी की परचरी

(मूल निमाड़ी)

●

श्री गणेशायनमः श्री सरस्वती नमः

।। लिखतं श्री सिंघाजी बाबा की परचरी ।।

●

कहे खेम विचार तब, साखी एक कही विचार ।
सतगुरु स्वामी जब कृपा करी, तब तें बुध मोहे सनचरी ।।१।।
आगे कथा कहूँ विस्तार, तुम सुरता जन लेवो विचार ।
सतगुरु प्रताप कथा जो कहूँ, चरन सरन तिहारे सदा रहूँ ।।२।।
सींघाजी नाम जात का गवली, बजावे पावा मोहोर बंसली ।
गावऽ गीत घुमावे देव, हरी भगतन को न जाने भेव ।।३।।
रहे उदमद करे चाकरी, अब नहीं जाणे दूसरी ।
ऐसे करते बहु दिन गया, हरसूद नगरी मो निहचे रह्या ।।४।।
गऊ बछेरू महेकी अपार, माता पिता कुटुम परिवार ।
निस वासर रहे तिन्ही के संग, मरम न जाणे भक्ति को अंग ।।५।।
एक समय ग्यानत के घर पगरण होई, ताको निवतो पाहो आई ।
निवता के संग तिहां चली जाई, संजा समय पोहंता जाई ।।६।।
उतते आये मनरंग देव, हरि गुण गावे निरगुण भेव ।
तिने समे सुरत समाणी कान, मानो सिंगाजी के मन उपजो ज्ञान ।।७।।
पावा मोंहोर हम बहुत बजाया, गाई मथवाड़ भोपा घुमाया ।
जोगी जती हम बहुतक सेया, ऐसा गुण तो कोई नहीं कह्या ।।८।।

जनम हमारो अहला गया, हरी भगतन को मरम न लह्या।
कीजे गुरु तो बतावें पंथु, अखंड सुहाग मिले हरी सोगंध ॥६॥
तब सिंगाजी चली सनमुख आया, गुरु गुरु कही मुख ते कह्या।
गुरु चरन पर मंसा धरी, कर जोड़ी जो विनती करी ॥१०।
कड़ऽ कटार तरकस तीर कमाण, सेल सी रोई मुद्रिका कान।
ऐसी भात दरसन को आये, कर जोड़ी जो सीस नवाये ॥११॥
गुरु गुरु करी मुख ते कह्यो, तब मनरंग स्वामी देखी रह्यो।
होय अधीताऊ जी येही, राखो सरन स्वामी तुमारे सही ॥१२॥
सुणी स्वामी प्रतिउत्तर दीयो, उपदेश लाग कहूँ को कह्यो।
यो मय मंत मरे नहीं भाई, कठण करणी राम सु सगाई ॥१३॥
तब सिंघाजी बोले बैना, गुरु परचे पड़ै सुवा जैसी मैना।
अंकर पुरबलो जो जागऽ, तब ऐसी होतऽ बार नहीं लागऽ ॥१४॥
इतनी सुनी ठिकाणऽ आयो, सब बिसार हरि चरण चित लायो।
ता पीछ दिन दोय मु घर आयो, पहिलो काम सभी बिसरायो ॥१५॥
तरकस तीर दिया सब नाखीऽ, करूँ गुरु कथा राम की साखी।

॥विश्राम साखी॥

छाड़यो सकल विकार, वाचा, मनसा, करमणा डार दियो हतियार ॥१६॥
लग्यो बाण निरवाण को, निकसी गयो दुवासा पार।
मन मुवासी मारिया, छिन नहीं लागी बार ॥१७॥
गुरु करणे की मन मो धरी, सत्त वे मन में लियो बिचारी।
सुरत धरी, घर ते ध्यायो, गुरु मनरंग को दरसन पायो ॥१८॥
राम नगर मो बसे मनरंग, राम रमे, उनहूँ के संग।
सींघाजी तहाँ चलि के आयो, कर जोड़ी तब सीस नवायो ॥१६॥
कर जोड़ी तब लागो पाई, अब दया करो मोरे सत गुरु साई।
दे उपदेश आपण कर लीजो, हम हैं अनाथ मोहे प्रेम सुख दीजो ॥२०॥
तब मनरंग बोले नीरमल बाणी, प्रेम भगत नाही रहे छानी।
जो तुम कु उपदेस की आसा, तज्ि मह मंत्त फिरो उदासा ॥२१॥

रेन दीवस करो राम की सेवा, ओर ही छाड़ पुजो आतम देवा।
सकल आतमा देखीये आप समाना, तब साईं सेवा साची कर माना ॥२२॥
तुम तो हो चाकरी पेसा, तुम कुं कैसा लागे उपदेसा।
जात गवली मन के मैला, बाल विछोहा डारत हो हेला ॥२३॥
घर अपणे लोन्हो क्रस्न अवतारा, सोही ने जान्यो मुड़ गवारा।
तीन लोक जी न मुष मु देषाया, ताही के सो के कर डोर लगाया ॥२४॥
बसुदेव देवकी जी न उबारे, कस णी दीवी जीन का कारज सारे।
प्रेम सनेही भगतन के ताता, अजरा, अमर श्री रघुनाथा ॥२५॥
असो रतन हात न आवे, गुरु बीन ग्यान कहा थे पावे।
मल मुत्तर की तुम्हारी देहा, कैसे जाणे प्रेम सनेहा ॥२६॥
सरूपा नंद जो आवै कोई, अन्त जाणो साहेब है सोई।
कोड़ी, कुचिल, अंग मलीना, ता कुं साहेब करी कै चीन्हा ॥२७॥
सेवा चाकरी सबन की कीजे, जीवन पद याही विधि लीजे।
मुगत मुल हे साची सेवा, जुग जुग बखाने सत गुरु देवा ॥२८॥
॥विश्राम साखी॥

जलत, तपत्त, उ जेतन की, सीतल भयो सब अंग।
लोहा ते कंचन भयो, पारस पर से अंग ॥३०॥
सत गुरु सबद गुण कीया, अन्तरगत लयो निज भेद।
दुख चवरासी नाखीया, लयो सुक्षम भेद ॥३१॥
सींघा कहेहऊ कछु ने जानु, सांचो सबद तीहारो मानु।
स्वामी देवो दछा, करो उपकारा, अब की राषो सरण तुम्हारा ॥३२॥
हुँ है मुरष मती को हीना, 'अजर' सबद मैं कैसे करी चीन्हा।
स्वामी तुम हो 'मुगत' के दाता, सतगुरु तुम हो सनाथ, अनाथ के दाता ॥३३॥

गुर परताप 'ध्रु' अटल पद पाया, गुर परताप प्रहलाद अमर छाया।
नामदेव कबीर गुरु के सरना, अवरन केतो के ही तरना ॥३४॥
अब स्वामी मोहे दछा दीजो, सेवक जान अपणा कर लीजो।

गुण तुम्हारा मोपै वरणो नहीं जाई, घट घट पुरण सत गुरु साईं ॥३५॥
अेसी वाणी सींघाजी बोले, तब मनरंग स्वामी अंतर की खोले।
करी कृपा दीन्हो उपदेसा, तजी माया भयो नीरगुण भेसा ॥३६॥
मनरंग स्वामी परमारथ कीन्हो, तब सींघाजी अत्ती भवे षुस्याल।
हंऊ अनाथ प्राणी, प्रभु कीया नीहाल ॥३७॥
सुण ता सबद साकी चड़ाई, गुरु आपणे की करी बड़ाई।
तीन लोक मा सतगुरु दाता, जाकी माया सतगुरु दाता ॥
जाकी माया सब जग षाता ॥३८॥
सत गुर हैं देवन के देवा, अजरा अमर जाकी है सेवा।
कहे मनरंग सुणो हो पुत्ता, घर अपणे की करो संजुगता ॥३९॥
मनरंग स्वामी कहे संमजाई, घर अपणे की करो सुधा जाई।
कहे सींघा, घर मेरो मैं पायो, अब तो हउ सरण तुम्हारे आयो ॥४०॥
तुमही मात पिता गुरु देवा, तुम बीना जुठी सब सेवा।
अवर सकल सब माया के फंदा, कनक कामिनी सेवे नर अंधा ॥४१॥
माया ठगारी ने सब जग षाया, दे सीर जारी जी न ब्रह्मा नचाया।
अवरन की तो केत्तीक बाता, ले डूबी कुल संमेता ॥४२॥
अब ते हउ सरण तुम्हारे आयो—मेरे मन कछु दुसरी नहीं भावे।
अब तो मोहे चरण समीप राषी लीजे, सींह सरण छोड़ाय
सीयाल मुख न दीजे ॥४३॥
माया की संग मैं बहुत दुष पायो, ता थे सरण तीहारे आयो।
कहे मनरंग सुणो रे भाई, बिन माया कैसी भगताई ॥४४॥
पुंजा अरचा कुँ माया कीन्ही, सुमरण काजे रसना दीन्ही।
बिन माया परमारथ ना होई, जेउ बस्तर बीना नंगन देही ॥४५॥
परमारथ काजे कावड़ फेरी, कठण भगत रामानन्द केरी।
परमाथ तो कबीरा कीन्हो, बस्तर फाड़ी हाट मां दीन्हो ॥४६॥
अेसो परमारथ करे एक चित्त, तब दरसन कीन्हो रघुपंत।
घर मा रहै सो ही जन साँचा, सो साची सेवा कहीये मनसा वाचा ॥४७॥

कहे मनरंग सब्द हमारो मानी लीजे, घर जाय सेवा सबन की कीजे।
मान्यो सब्द भयो ले लीना, सतगुरु कह्यो सो नेहचे कीन्हा ॥४८॥
मान्यो सब्द जो मंदीर आयो, कुठम सहीत सब सुख पायो।
ता पीछे बरस येक जो बीतो, लयो उपाय येक अंण चीतो ॥४९॥
॥विश्राम॥

अण चीती अण गैब की, और न जाणे भेद।
महेषी तसकर लई गया, मानो रूठो नारायण देव ॥५०॥
पहलो परचो यो भयो, भई जुंग मो जाण।
घट मो साईं संचरयो, कहे षेम नीरबाण ॥५१॥
महेकी लीन्ही तबही चोरा, ध्यायो लोग नगर को चहुँ वोरा।
पाड़ा पाड़ी घर घर रैकऽ ले महेकी तसकर छेकऽ ॥५३॥
घर के लोग षीजे और भांड़े, सींघा अपणी ठेक नहीं छाड़े।
दुरमुष भयो सकल परीवार सींघाजी हरखे मन मंजारे ॥५४॥
दोड़ दोड़ हारे सब लोक, गई कमाई सगली फोक।
नगर लोक सबही ध्यायो, सींघाजी कहु गयो नहीं आयो ॥५५॥
अन्तरगत सब मालुम कीन्ही, जाकी माया सो भल लीन्ही।
वाता कहै कर्म को हीणा, दुवारे बैठो सीर हात जो दीना ॥५६॥
कलपांत करता दिन दोय जो बीता, तब सींघाजी बोले अणचींता।
सींघा कहे माता मो तन जोवो, बासण धोवो पैड़ी संजोवो ॥५७॥
पाड़ा पाड़ी छोड़ी दीजो, नाहे कलपना अब न कीजे।
गुरु गोवीन्द तो तुम्हारो ध्यायो, करि पिछा वो माल घर लायो ॥५८॥
माता कहे छानु रहे रे मुवा, भैंस गई ताकु दिन तीन जो हुवा।
माता खीजी दीन्ही गारी, समजी नहीं मंत की भोरी ॥५९॥
परमेसर तो तोमे आयो, और लोग ने बेची खायो।
तब सींघाजी समजे मन माही, माता सबन की असी होई ॥६०॥
कबीर की माता सी, कदर पुकारी, नामदेव की माता दीन्ही गारी।
यैसी बात केतीक बखाणु, भगत द्रोही सब जगत मडाणु ॥६१॥

तब सींघाजी स्याणी मत कीन्ही, पाड़ी छोड़ आगे कर लीन्ही।
पाड़ा पाड़ी ले गये जीहा ॥६२॥
भैसी पाड़ा मेलो भयो, धन धन तु साई सींघाजी कह्यो।
तुम बिन कोण करे रसमाणो, हंउ सदा सेवक, नहीं बिराणो ॥६३॥
दूद दही जब घर आयो, तब ही सब के मन पत्तीयायो।
साद साद कहै कहे सब कोई, जुग टेक संत की राषी सोई ॥६४॥
माता वन्धु जो परचो पायो, साचो मत्तो सींघाजी ने पायो।
ये कहे सो चलीये चाल, इनकी मत मैं होय निहाल ॥६५॥
॥विश्राम॥

मतअबर बल साद की, बिरला पावे पार।
अगम अन्त कु गम करै, कहै षेम विचार ॥६६॥
मगन मत्त है साद की, सीची निरगुण बेल।
गीन्यान दीपक जोवता, सो बिन बाती बिन तेल ॥६७॥

ता पीछे लोग मंधाता आये, सींघाजी कुं सबद परत सुणाये।
चलो स्वामी मंधाता जावा, आद उंकार बसे तीही ठावा ॥६८॥
सींघाजी बोले निरमल वाणी, सकल तीरथ जहाँ पत्थर पाणी।
आद उंकार बसै सब घट माही, सतगुरु परचे हम पाया याही ॥६९॥
तब हरी केसो बोले नामा बंसी, तुम तो प्रमारथ की मंत प्रकासी।
तुम हो श्री परमेश्वर को अंसु, कारज हमारो सीजे कैसो ॥७०॥
कहै सींघा तुम चलो भाई, हम बुलावे सतगुरु साई।
नाव चंड़ता होसी मेला, पीछे से हम आवे अकेला ॥७१॥
लोग कहै इनसे हठ ना कीजे, सबद ईनको मानी लीजे।
लोग कहै इन पर अग्या मागो ईनके ष्याल कोई जणी लागो ॥७२॥
सबही लोग घर कुं आये, तीरथ चलणे को मतो उपाये।
अपणी अपणी सुंज संजोई, मंधाता के मारग लगे सोई ॥७३॥
दीवस तीसरे मंधाता आये, सींघा स्वामी को मारग चाहे।
नाव चंड़ता को सबद जगायो, देषो स्वामी अजहु नहीं आयो ॥७४॥

तब सींघा स्वामी सुरत जगाई, छीन येक मै पहुँचे जाई।
हरी के सब सहित द्रस्टी नीहारी, तब ही स्वामी सनमुष आण पुकारी ॥७५॥
सींघा स्वामी जहाज पर आये, बाल गोपाल सबही चड़ाये।
सकल सब मिल उतरे पारा, जाई परछो देव उंकारा ॥७६॥
येकादसी, द्वादसी तीरोदसी जाणी, चतुरदसी, पुन्यंव् बषांनी।
दिना पाँच लो रामत कींन्ही, पड़वा के दीन सुरत उठी कीन्ही ॥७७॥
लोग कहै चलो घर कुं जाआ, अेसो सबद सब कोई सुणाईया।
कहे स्वामी तुम चलो भाई, हम तुमसे कब कह्यो की नाहीं ॥७८॥
तन मन हमारा गुरु के पाईं, सदा सरवहा उँहा और याही।
सकल लोग कुं सबद सुणायो, तब स्वामी अपणु गात छीपायो ॥७९॥
आयो स्वामी अपणे दुवार, पीछे रह्यो सकल संसार।
लोग कहे कहाँ गयो स्वामी, कवण अचरज भयो अंतरजामी ॥८०॥
आवत जात संग नहीं कीन्ही, साद की लीला कोई न चीन्ही।
अेसी कहे तो जो मंदर आये, सींघा स्वामी को दरसन पाये ॥८१॥
देषी दरसन दुर थी ध्याये, कहो स्वामी तुम कब आये।
कहे स्वामी सत गुर जाण, मेरी कही कोई नही माने ॥८२॥
नामदेव कबीर की बात न मानी, गोरष दंत से षेचरी ठाणी।
मो गरीब की कोण चलावे, जैसे तैसे साईं छेव नीभावे ॥८३॥
माता कहे कहु गयो नाही, दिना दस को बैठो घर माही।
सकल लोग अचंबो कियो, नर नारी मिल चरणांमृत लीयो ॥८४॥
अैसो सबद माता जब कह्यो, सकल लोग अचंभी रह्यो।
दिना पांच लो रामत कीन्हो, ताकी साष सभी मिल दीन्ही ॥८५॥
॥विश्राम॥

साषी दीन्ही जगत ने, माता माने नही बात।
आवत जात संग नहीं कीन्ही, पण रह्यो हमारी सात ॥८६॥
अचरज भयो जगत मो, साषी सुणी नही वेद।
धन धन कला साद की, बिरला जाणे भेद ॥८७॥

ता पीछे बिप्र दोय कुबुध जो ठाणी, मागै त्रीया साधु जाणी ।
चले मंदीर थी जब ग्रैसी धरी, होय सांचो भगत तो न राषे नारी ॥८८॥
आये नगर मो कीया पसारा, पुछे नग्र मो कहा बसे साद तिहारा ।
पुरस एक ने मंदिर दियो बताई, विप्र दोय तिहां पोंहचे आई ॥८६॥
परदेसी विप्र दो दुवारे आये, ताको भेद कोई नही पाये ।
दुस्टी ब्रांह्मण बोले उपाद केड़ा, सबद कहे कमी जवाद ॥६०॥
है कहां साद बताओ मोही, तीहा हम चल कर जावे दोई ।
तब घर के लोग वचन उचरे, गयो साद सरसती के दुवारे ॥६१॥
जी हां तापे अतीत वन मा, पढ़ावे बालक नहीं आवे गांव मा ।
अती उत्तीम कुंड सरसती जानी, उत्तर दीसा वहे ताको पाणी ॥६२॥
इतनी कही घर के लोग, जावो जहां चली तुम वेग ।
तब चले द्रोस्ठी मारग लीन्हो ॥६३॥
लागे मारग जो गये जीहां, सभा सारी बैठी छे तहां ।
सींघा स्वामी बीच में बैठा, आवत विप्र दुर ते डीठा ॥६४॥
सींगा स्वामी तबही जानी, फीको वदन दसा कुमलानी ।
विप्र बुलाये सनुमान जो दीन्हा, तुम आये सो कारज कँउ नहीं कीन्हां ॥६५॥
वो सतवंती अग्या नही मैठे, तुम सबद रमायो नहीं ठेट ।
वो सतवंती के लीनन भावे, अती आगता साग से करती सेव ॥६६॥
तब ब्राह्मण उठी लागे पाई, चुक हमारी बगसो साई ।
विप्र दोय मन मो पसताना, बहोत प्रछीत हमही ने कीन्हा ॥६७॥
हम हैं द्रोस्टी मती के हीना, भगत मारग हमही नहीं चीन्हा ।
तुम हो अन्तरजामी मुगत के दाता, हम हैं बालक तुम हो पीता ॥६८॥
सभा सारी मैं अचरज भयो, ब्रांह्मन लागे साद के पाये ।
कोण गुन्हे ईनही कमाई, स्वामी के चरन सीस नवाई ॥६६॥
सभा सारी स्वामी से सेन मिलावे, कहे स्वामी नहीं कहण को दावे ।
ये ही साद मोहे परमारथ बतायो, सोई आपणे घट छिपायो ॥१००॥

इनहु येक उपगार जो कीन्हा, बड़े संत को पंडतरा दीन्हा ।
वैसी हमसे कहा होई, वे संत परमारथी प्रेम सनेही ।।१०१।।
ईतनी कही सींगाजी भये ठाड़े, दोउ विप्र के कर गहे गाड़े ।
लिये जो विप्र जो घर आये, लंबा बीछाण जो पठसाल बिछाये ।।१०२।।
घर मा कहै की ये बड़े मिजमान, अंतरगत की स्वामी जाण ।
तां दीन राष रसोई दीन्ही, दिना दुसरे बिदा जो कीन्ही ।।१०३।।
ले परतीत गये जब जोसी, ता पीछे स्वामी बात प्रकासी ।
ब्राह्मण भये हैरान, स्वामी सब घट येक करी जाण ।।१०४।।
।।विश्राम।।

हैरान होय विप्र गये, स्वामी समजे मन माहे ।
जीन पर सतगुर रछा करै, ताहे न बंके बाल ।।१०५।।
सतगुरु जीन पर रछा करै, ताही बंके बाल ।
जीन सीर छत्र नीरगुण का डले, सोहा देज पे नाहीं काल ।।१०६।।

स्वामी षेले नीरगुण दाव, माया संग नहीं लावे ।
मात पिता त्रीया सुत भाई, तिनसे कछु ने राषे सगाई ।।१०७।।
घर में महकी और गोरा, मुष से कछु न कहे की मेरा ।
केते दिन हरसुद मो सुष लहया, ता पीछे पीपले पयानो कीया ।।१०८।।
सींघा स्वामी पीपले आयो, नगर लोग बहोत सुष पायो ।
देषी लछमी संजो साज, भीड़ीयो भाग नगर को आज ।।१०९।।
गाँव गोयरे वस्त उतारी, देष्यो नंगर दुर थे नीहारी ।
कुंठीया चार नंग्र मो देषावे, तब तो नंग्र लोग लेण कु आवे ।।११०।।
भीलाला लोग बसे तीही ठाई, भगती मारग ने बुजे कोई ।
लै वस्त आये नग्र मंजारा, चहुटे आये कर दीन्हो डेरा ।।१११।।
डोगरू हरजी बसे तीही ठाव, जात भीलाला पटेल कहावे ।
वे सींघाजी पर वचन उचारे, बाधो घर जहा तुम्हारो विचार ।।११२।।
स्वामी कहे हम कछु महल नहीं चावे, छोटी सी मड़ी सहेज
बणी आवे ।।११३।।

बड़ो जेठो लींबाजी भाई, तीन सींघाजी कुं टहल फुरमाई ।
बणावो आखर महेषी काज, कहयो सबद अत्ती आतुर षीजे ॥११४॥
कही सबद आप महेकी मो गयो, सींघा स्वामी को ठहल फरमायो ।
तब स्वामी षणीतो लई षणने कु बैठा, आलसी यो येक द्रस्टी
दीठा ॥११५॥
कह्यो गींडोली भयो टुक दोई, तब स्वामी के मन करुणा भई ।
ध्रग ध्रग मोही संसार, भये माहा पापी अवतार ॥११६॥
जाड़ बीड़ काटी निकंदेन करे, केते जीव मारी भक्षण करे ।
जुठ परपंच करी करै बेयपार, पापी पींडन भजे मुंरार ॥११७॥
डंड पाषंड करी माँगे भीष, दया आधीनता काहू की नहीं लेष ।
चोरी नारी पर राषे भाव, जोजक कारण षेले दाव ॥११८॥
अेसी कही त्राह जो भाषी, दीन्हों षणीतो हात से नाषी ।
ध्रग ध्रग मोही संसार, सर्व वस्त तजी भजे मुरार ॥११९॥
अेसो कही गये घर मांही, सुतो जीहां आसण बिछाई ।
वोड़े चादर लंबी ताणी, अंतरगत धरह्यो नीज ध्यान ॥१२०॥
सोवत सोवत रजनी आई, तब लो महेषी लायो भाई ।
देषी ठोड़ बहोत रीसाणो, लछमी काज न कीयो ठीकाणो ॥१२१॥
ता दिन सींघाजी सुता उपास, करे भगती अत्ती उदास ।
अेसे करते पहर चवथो आयो, सींघा स्वामी षु आण जगायो ॥१२२॥
सींघाजी बोदके मन माही, जणी गउ वेर लाये कोई ।
दुजी हाँक गैब की पुकारी, सीरो सबद अमीरस जो जरी ॥१२३॥
कहे सींघा हक माणुस की ना होई, गैबी पुरस आयो कोई ।
चेत्यो स्वामी दुवारे आयो, गैबी पुरस को दरसन पायो ॥१२४॥
तब स्वामी द्रड़ कीन्हो मन, नक सक सुधा नीहारयो तेन दुवादसी ।
बावरी कछनी काछे, गले फटी कर तुंबा विराजे ॥१२५॥
छोटो अस्तुल गरवो गात, स्याम मुरत मदन विष्यात ।
देषी सरुप स्वामी लागो पाऊँ, तब ही बोल्या श्रीपति साई ॥१२६॥

माँग माँग हुंउ परसन भयो तोही , जो कछु तेरे मन ईछा होई ।
कहे सींघा हुं कहा मांगी जाणु, मो मत वोछी बुध को हीणु ॥१२७॥
कहे सींघा मेरो भांजो संदेह, हम तम समरत माँगा येह ।
देह धरु नहीं भगत कहाउ, बहोरी बहोरी गर्भ वास ना आँउ ॥१२८॥
मांग्यो सींघा सोही दीन्हो, भगत वछल प्रतिपाल जो कीन्हो ।
दीन्हो प्रसाद मस्तक हात जो देई, दीयो अभय पद बोल्यो जगदीसई ॥१२९॥
दई सबद निरंतर सीधारे, करो भगती जुग मो तंत सर ।
अेसो सबद कह्या अंतरजामी, भगत वछल सदा निहि कामी ॥१३०॥
तरण तारण की गति मति बताई, ताते स्वामी मिल रह्यो माही ।
जब स्वामी के भरम भागो, होय मगन नीसंकरी नाचण लागौ ॥१३१॥
॥विश्राम॥

करि कीरतन निरंतर नाचे, और भीतर मोड़े अंग ।
पांच पचीस विवहल भई, सो नाचे निरगुण की संग ॥१३२॥
मान मरत सींघा आनन्द भयो, भई विधवा पचीस ।
कन्या पचीस ग्रभ गली, तब घर वस्यो जगदीस ॥१३३॥

सींघा स्वामी लागो हरीके ध्याना, लोक वेद की अटक नहीं माने ।
गुरु को सबद सीर पर राषे, अजर जरता अमीरस चाखे ॥१३४॥
कथनी कथे नीरगुण बाणी, प्रेम भगत साहेब की जाणी ।
होय मगन निसंष करी गावे, देव द्रस्ट अंतरगत कु ध्यावे ॥१३५॥
सबद स्वाल नीरगुण बोले, साई सरण सदा सम रस षेले ।
जोग जुगत आसण बंधे, अनभै राग ग्रहे मो साध ॥१३६॥
डोगरु हरजी हुवा जब सीष, तब गीन्यात गवली देषी नही सके ।
करै उपाय रात और दीन, सींघाजी सुमरे श्री जगदीस ॥१३७॥
आप अकेला अब न कोई संग, वे पांच पचीस मिलिया धीग ।
कहै गवली गीन्यात में नहीं लीजे, गीन्यात छेक घर ये ही को कीजे ॥१३८॥
असी मत सब मिल कीन्ही, आण दुहाई घर कु दीन्ही ।
तामो अस्ट छोटो जवाई, सात पाँच मिल बुध उ ।॥१३९॥

अैसे करता निराट पर आये, अन्तरजामी तुरत ही ध्याये ।
जुड़े गवली करे उतपात, तब ही श्रीपती बोल्या विष्यात ॥१४०॥
जन मेरे की राषु लाज, अंतरगत से सारु काज ।
तब सब गवली की मत भुलाई, येक येक तन रह्या चाही ॥१४१॥
मन की उकंत मन मो पावे, मुंदे मुष कछु नीसरण नही पावे ।
गवली सब सींघा तन देषे, मुष तें वाणी न नीकसे येक ॥१४२॥
सब गवली उठ घर जाई, सतगुर प्रगटे संत गुर साईं ।
सींघा स्वामी अंतरगत जाणी, कछु वन बोल्या मुष ते वाणी ॥१४३॥
॥विश्राम॥

स्वामी समजे मन मो, अवरन काड़ी बात ।
अैसो अनरथ उलटीयो, सो रछ्या करी रघुनाथ ॥१४४॥
श्री रघुनाथ रछ्या करी, भई जुग मो जांण ।
सींघा स्वामी समरथ भयो, सब दीसे प्रतिक समान ॥१४५॥

सींघा स्वामी मीरत्तीक हुई फीरऽ लोक वेद की अटक नहीं धरे ।
भली बुरी कहै जो कोई, ताको पाछु उत्तर नहीं देई ॥१४६॥
स्वामी षेले निरगुण दाव, निरमोहीत, सदा मोह नहीं ल्यावे ।
येक समय सन्यासी आये, गावऽ अण गावे के येक ठे थाव ॥१४७॥
सो चल आये स्वामी के दुवार, करे षेचरी अधीक अधिक अपार ।
कहे सन्यासी हमें दुद पिवावो, तुम तो साद बड़े महंत कहावो ॥१४८॥
स्वामी को मन भयो षुस्याल, सब कछु हे तुम्हारो माल ।
तीन लोक मै माया तुम्हरी, बचे सों जुटंण हमारी ॥१४९॥
चेरी तुम्हारी दुहावे कु गई, ल्यावे दुद सो अर्पं सोही ।
तब लो सन्यासी उठे अकुलाई, चलो सब जहाँ महेकी होई ॥१५०॥
निकसी अतीत गांव के बाहेर आये, मात जसोदा के दरसन पाये ।
जाय मिले जहाँ नदी पीपलाल, सीर से पैंड़ी तुरंत उतारे ॥१५१॥
ल्याव री गवलन हमै दुद पीवावो, तुम तो बड़े संत की त्रिया कहावो ।
माता कहे पीवो गुसाई, मेरो यामे कछुव नाहीं ॥१५२॥

तन मन धन संतन पर वारु, लेवो कछु तुम्हारे सारे।
पीयो दुद अतीथ तिहीवार, माता पर तब वचन उचारे ॥१५३॥
और माता कुं दीन्ही रामदुहाई, कन्या तेरी कुं पय पावो जणी कोई।
माता पैड़ी सिर पर लीन्ही, करता की गत कीन्हीं नहीं चीन्ही ॥१५४॥
रीते बासण सीर पर धरे, भयो दुध अधिक अपारे।
माता सिर से पैड़ी उतार, दुद से बासण भरे करतार ॥१५५॥
लई दुहा वो घर कुं आई, कन्या नाहीं बहोत बिलपाई।
साद कहे कन्या कुं पय दीजे, आतमा बिलषे गोदी लीजे ॥१५६॥
नारी कहे मो पे लीवी नहीं जाय, अतीत दीन्ही राम दुहाई।
पय पीवण की अटक जो दीन्ही, हम वाचा मनसा से मान कर लीन्ही ॥१५७॥
दीना पांच लो षीर न पायो माई, मास येक की कन्या होई।
नगर लोग जब मालुम कीन्हीं, तब अती आवा दीन्ही ॥१५८॥
करि विनन्ती लागो पाई, कन्या कुं पय दीजे री माई।
कहे मात तुम जणी डराई, कन्या कुं राषे श्री रघुराई ॥१५६॥
॥विश्राम॥

स्वामी के मन आनंद भयो, दिन दिन अधिक अपार।
लहै लहै करती कन्या दीसै, सो रक्षा करी मुरार ॥१६०॥
कन्या तो कोमलाणी नहीं, अधिक सरुप चड़ीयो देही।
साद साद आनन्द करे, सो दिन दिन दुणो नेह ॥१६१॥

साधु जन सदा आनंद करे, साई भरोसे काहु से ने डरे।
निस वासुर करे राम की सेवा, अवर ने जाणे दुजो देवा ॥१६२॥
मगन मतो सदा गलतान, सो ही छके ब्रह्म गिनान।
प्रेम सनेही सबसे राचा, वे गिन्यानी पुरस बोले सांचा ॥१६३॥
परथम पुरुस काहु से न करे उपाद, षेचरा कपटी को उस्ताद।
अतीत अभ्यागत कुं जाणे, हीरदा सुद स्वामी सब कुं माने ॥१६४॥
सीष साका कीया बहुत, परगट चल्यो सींघाजी को पंथ।
सतगुर सबद सदा सिर पर राषे, जीवन जनम सुफल कर चाषे ॥१६५॥

जे बोले सो ही फुरे वाचा, देसौ देस गई है गाजा ।
गुरु मनरंग के फुरयो परताप, स्वामी जपै अजपा जाप ।।१६६।।
सीष साषा मतो विचारे, मड़ी बधावणे को मतो विचार ।
सोई वचन स्वामी कुं सुणायो, सो वचन स्वामी के मन नहीं भायो ।।१६७।।
स्वामी कहै टीकाणु तुम जाणी बंधावो, अघंट घड़ीत घट अमर छायो ।
धरती दुलीचा गैब की बणाई, अधर धरयो बिन डोर कंनात ।।१६८।।
कहै सीष सुणु महाराज, कीजे छाया देही काज ।
स्वामी कहै हम नाही जाणे, करो कछु जो तुम्हारे मन भावे ।।१६९।।
हम निरदावे कछु दाव न लावे, करो सोही तुम्हारे भावे ।
इतनी बात स्वामी कही, अब तुम जाणि बुजो मोही ।।१७०।।
तब सब मिल मतो विचार, मंदिर काज नींव जो डारे ।
नाषत नींव लागी नहीं बारा, सींघा स्वामी सबसे न्यारा ।।१७१।।
आप सकत से जीने नाषी नीव, ताही मु नीकस्यो येक जीव ।
जात कणु तास को नाव, लागे मंजुर तिन घाल्यो घाव ।।१७२।।
मारी जीव कीन्हों घात, स्वामी के डीग चलि गई बात ।
अेसा सबद सुणया जब काना, सुणी बात तब बहोत रिसाना ।।१७३।।
हम कही सो तुम नाही मानी, तुम काहे कु हत्यो यो प्राणी ।
कहे सीष ये मारयो मजूर, हम तो बैठा तुम्हारे हजुर ।।१७४।।
स्वामी सबन पर षीजे अपारा तुम अस्ट मारयो बाप हमारा ।
कीन्हो गुन्ह लागो दावा, हम तो घर नहीं बंधावा ।।१७५।।
कहै स्वामी सीष मंजुरन कुं दीजे, सबद हमारो मानी लीजे ।।
मानो तुम परमेस्वर पर घाल्यो घाव, सब घट सीव हमारे भाव ।।१७६।।
जब से सतगुर लागो कांना, तब से देषु बीठिल बलि सब येक समाना ।
निस वासुर करू ये ही सेवा, सब घट जाणु आतम देवा ।।१७७।।
तब सकल बालक आगे पाई, सबद या करो मेरे सतगुर साई ।
कीन्हीं गुन्हे माप जो कीजे, गया प्राण की सुध जो लीजे ।।१७८।।

गया प्राण कहाँ कीयो वासा, छाड़ी काया भयो उदासा।
कवण काया कवण घट संचरयो, कोण अस्थान देह जो धरी ।।१७९।।
असो सबद सब मिलि सुनायो, तब स्वामी मन मो आनंद पायो।
कहे स्वामी हम कहा जाणें, जाकी गत सोही पहेचाने ।।१८०।।
सींघा स्वामी प्रति उत्तर दियो, अपणे सिर भार नहि लियो।
सींघा स्वामी मन मैं विचार, घठि बढ़ि सांई पर डार ।।१८१।।
सींघा स्वामी भजे गोविन्द, घट मो प्रगटयो गिन्यान को चंद।
सिष साषा जब परचो माँगे, तब स्वामी सुमरयो श्रीरंग ।।१८२।।
उलटि रीत चलि कलिजुग, सिष परचो मागे गुरु के आगे।
ये ही त्रास पड़ो हीवाले गलीया, अंतर ध्यान भयो गोपाल ।।१८३।।
कहे सींघा सुणो रे भाई, परचा पुरवे श्री रघुराई।
छालपा नगरी येक ईहां, गयो प्राणी समाणो तीहां ।।१८४।।
जात रचपुत सोई कहावे, सुंदर त्रिया ताको नावे।
पहेले प्रथम बालक वाहीर, ताही के बोंदर लीयो अवतार ।।१८५।।
होसी पुत्र तणो अवतार, बोल्या स्वामी ताकी प्रचार।
सोही घड़ी सोही तिथवार, मास नवे होसी अवतार ।।१८६।।
तब सब मिली येउ भाषे, स्वामी पर कागद लीषि मागो।
तब स्वामी कागज लिषि दियो, नव मास को नेहेचो कीयो ।।१८७।।
बोल्या स्वामी सबद विचारी, नेहचो पुरवे श्री मुरारी।
साकट संसार धीरज नहीं धरे, हेरा फेरा नित का करे ।।१८८।।
असो करता नव मास जो बीता, भयो बालक हरी सब चिंता।
तब सबके मन परतीत आई, दौड़ कर लागे साद के पाई ।।१८९।।
धंन धंन कहे रे सब कोई, स्वामी समान ने पुरवे कोई।
स्वामी कारण बोले बड़ाई, करे डंडवत सीस नवाई ।।१९०।।
धंन धंन कही बरत्यो परसाद, तुम हो स्वामी अगम अगाद।
अंतरगत की मालुम कीन्ही, उतपत परलै दोनु चीन्ही ।।१९१।।

।।विश्राम।।

उतपत परलै दोनों चीन्ही, चीन्हो भाव कुभाव।
घट मट निरंतर राता रहै, कहे षेम सतभाव ॥१६२॥
सींघा स्वामी समस भयो, भाव भगति अति नित नेम।
जीवन पद अति सुफल लह्यो, सो कहा कही गावे खेम ॥१६३॥
ता पीछे सुणो असी, सतगुर परचे जन षेम जो कही।
सींघा स्वामी मंधाता आये, सीष साषा लिये बुलाये ॥१६४॥
जात नाहाल कालु तास को नावे, बहुत रागी पषाउद बजावे।
सजी मंडली चल्यो स्वामी, सदा सर सो अंतरजामी ॥१६५॥
सीष साषा सजी संजुगता, उमग्यो लोग नगर बहुत।
साज माज चले जोगी वैरागी, संन्यासी सहित सबकी धुनी जागी ॥१६६॥
स्वामी की संग मंधाता आये, सब मिल आसण कियो येक ठाई।
जोगी जती और वैरागी, ठोड़ ठोड़ धुणी सबकी जागी ॥१६७॥
आस पास आसन चहु वोर, स्वामी को आसण बीच मंजार।
बैठो गुपत सोई नहीं जाण, स्वामी लागो हरि के ध्यान ॥१६८॥
संगी सनेयी सरंजाम कु जाई, तिन तीरथ मो बात चलाई।
सींघा स्वामी असनान षु आयो, सीष संपरदाई दरसन कु ध्यायो ॥१६९॥
ता पीछे लोग जो ध्यायो, पान पोपरा नरेल ल्यायो।
सकर मिठाई अवर बतासा, लोंग लाईची षारीक बतासा ॥२००॥
चहु दिसा से ल्यावे नर नार, स्वामी लई सोपे करतार।
रोक रुपैया और पैसा चड़ावे, स्वामी तो कछु हात न लावे ॥२०१॥
स्वामी कहे पठे राम की कीजे, मेरो नाव कोई जणी लीजे।
हों सदा सेवक राम को चेरो, येह माया राम को पसारो ॥२०२॥
आयो परसाद टोकरा दस पाँच, को जन गावे कोई पुस्तक वाचे।
बहु रंग रचो स्वामी के पास, केतेक भजनी केतेक उदास ॥२०३॥
सींघा स्वामी का बरत्यो परसाद, संन्यासी वैरागी माड़्यो उपवाद।
गीरस्त गवली यो साद कहावे, आपही आप बैठो पुजावे ॥२०४॥

सकल भैक को मरध्यो मान, चलो स्वामी देषा ईनको गीन्यान ।
बैरागी चार महंत पठाये, सींघा स्वामी के अषाड़े आये ॥२०५॥
आये बैरागी अषाड़े मंजारा, देषी सभा पगड़ी बंद सारा ।
बुजे बैरागी स्वामी को नावे, चलो सीरदार जो महंत बुलावे ॥२०६॥
बोल्या सींघाजी सीतल बाणी, महंत कहै सो हम ही जाणी ।
वे कहे सो हमसे नहीं होई, हों अनाथ रहु राम के सरणाई ॥२०७॥
जाय सुणावो महंत से ये ही, हमने जाण बात कैसी होई ।
गये बैरागी महंत से कही, वे बाबु न आवे कोई ॥२०८॥
तब महन्त मन मो रीसाणो, उठ्यो आसण थी तजी ठिकाणो ।
कहै मन मो, या पर परचो लीजे, की बांधु पाग की भेक वाही कु दीजे ॥२०६॥
चल्यो अतुर स्वामी पर आयो, सींघा सींघा करी के बुलायो ।
करड़ी द्रस्ठ बोले विक्राला, अति आतुर चड़्यो नीदाल ॥२१०॥
सींघा स्वामी से बात लावण करे, हलका भारी सबद उचरे ।
कहे महन्त तुम साद कहावो, घोड़ा गैबी अरसते ल्यावो ॥२११॥
गैबी दाण पावो गैबी को नीर, तो हमारे मन उपजे धीर ।
तब हम मतो साच कर माना, रामानन्द कबीर तोही कुं ठाणा ॥२१२॥
कहै स्वामी, मैं हूँ उनके पग की धूल, कहां श्री रामानंद कहां कबीर।
ये ही पटंतरो मोही नहीं दीजे, हंऊ अनाथ मोपै येक ना सीजे ॥२१३॥
सींघा स्वामी बोल्या ये ही, तुम थे प्रभु सब कछु होई ।
कहे सींघा हम सबद येक रमावा, जो स्वामी तुम दुप नहीं पावो ॥२१४॥
तुम हो श्री प्रेम गुसाई, तुम थे सरीहे सगरो काम ।
तुम ल्यावो घोरा हम ल्यावै दाना, छाड़ी बीबाद सबद जो मानो ॥२१५॥
सत सबद यो मानो षरो, अण पावौ गैब को नीर ।
जो तुम मन मो ल्यावो न भींन, तुम सुहाय तो मांडु जीत ॥२१६॥
तंग तोबरा सगरो साज, मोहे भरोसो हे तुम्हरो आज ।
असुर के हाथ थे जीव छोड़ायो, कीबी कृपा श्री रघुराय ॥२१७॥

अब तो तुम ही दरसन दीन्हों जनम हमारो सुफल कीन्हो ।
तुम भगत वछ्ल हो दीन दयाल, दीन्हो दरसन कीयो निहाल ।।२१८।।
पहेले अपणे को परचो लीजे, तब जाय हात दुसरे कु दीजो ।
तब कपुत सपुत मालुम होई, जैसो नर तैसी परतीत होई ।।२१६।।
बैरागी मन मो 'मुरषानो, आयो आतुर सो पड्यो षीसाणो ।
सींघा स्वामी कु समरत सो देष्यो, बैरागी अपणु जीवत्र करी लेष्यो ।।२२०।।
कर जोड़ी ओर लागो बाट, सींघा स्वामी बैठो आपणे ठाव ।
आसण मारी बैठो स्वामी, सदा सुमरे अंतरजामी ।।२२१।।
।।विश्राम।।

स्वामी तो सुमरण करें, जपें अजपा जाप ।
हद छाणी बेहद रमे, जहां पुन नही पाप ।।२२२।।

ता पीछे संन्यासी फिरीयाद, करि फीरीयाद बदेबाद ।
हत्ते हुड़दंगा मर्म न बुजे, फिरे उदमंद जो नहीं सुजे ।।२२३।।
मुगल येक अती आतुर सो आयो, ताके सरवण सबद सुणायो ।
षोटी षरी कही कमि ज़वाद, देषो ईहां आयो एक साद ।।२२४।।
तीरथ बरत काहु षु नहीं माने, येसी कही मुगल के कान ।
माथे पाग काहु षु नहीं माने, जात गवली चढ्यो अभिमान ।।२२५-२६।।
ताल पषावद जांजर बजावे, बैठे आसण बहुत पुजावे ।
नारेल षोपरा द्रव्य आयो अपार, मीरग नाद मोह्यो संसार ।।२२७।।
येक वहां मंड्यो बजार, सांची जुटी कही हजार ।
सुणी सुणी मुगल दियो जुबाब, होयगा कोई अजरायेल तुम्हारा बाप ।।२२८।।
तुम फकीर नहीं खुदा ये षोये, फीर तुम षु जो हम पै आये ।
पहेले परचो तुम बतलायो, पीछे उस पुरुस को बुलाओ ।।२२६।।
गई फिरियाद जो रोके संन्यासी, मुगल के घट प्रगट्यो अविनासी ।
ता पीछु स्वामी कु मालुम होई, अविगत की गत बुजे ना कोई ।।२३०।।
तब लों बड़े महन्त कु मालुम होई, रोके संन्यासी मुगल ने सोई ।
कहे महंत से सुणी कछु बात, कवण चुक कवण उतपात ।।२३१।।

कहे लोग इहा आयो येक साद, ताके उपर गई फिरियाद ।
तब महंत षीजै दै गारी, देषो मुड़ीये कीन्ही गवारी ।।२३२।।
येक सबद हम कुं नही सुणायो, कयो काम बिना फुरमायो ।
तब महन्त मुगल पह जाई, सबद येक सीतल सो कह्यो ।।२३३।।
तुम हो दीन के घर षुदा के प्यारे, छोड़ देवो संन्यासी सारे ।
ईन भगती को मरम नही जाणो, वेद की तेनऽ नाम बषानो ।।२३४।।
कहे मुगल सुणो गुसाई येक साद को अबजस कराई ।
आये साद तापर परचो लीजई, अब ही बुलाये ताहे पंची कीचे ।।२३५।।
असी बात इनही कही, हमारे मन मो कखत बही ।
तब हम उनकु रोके सही, हमारे आगे फुड़ी कही ।।२३६।।
नामदेव जात को रंगारो, गउ जीवाय जोनऽ देवल फेरयो ।
साद सती परचो मागें, सो जरी मुवा विनहि आगे ।।२३७।।
हम जाणे साहेब सब के माही, हे आसा कहु ना सत नाही ।
उच नीच करि भिन जो कोई, भीस्त छोड़ वो दोजक जाई ।।२३८।।
असी बुध मुगल के घट परकासी, तब छोड़ दीये सबै संन्यासी ।
तब हों संन्यासी सुष पाये, ले अतीत आसण पर आये ।।२३९।।
आगे कथा कहा लौ कहु, कहत कथा को पार न लहु ।
जब संन्यासी अपणे आपे, ता पीछे मुगल परसाद लई आये ।।२४०।।
लीजो सींघाजी हमारी भेट, कीजे कबुल सांई के पेट ।
फीरियाद तुम्हारी हम लो आई, बहोत चुग संन्यासी खाई ।।२४१।।
कहे सींघा धन धन तु सांई, तुम बिन असी कोण कराई ।
जो कोई सरण तुम्हारो आवे, राम भरोसे सब सुष पावे ।।२४२।।
हम कु तो मालुम नाही, कोणा जाणे पर कैसी होई ।
सर अवसर की कोण विचार, तुम बिन असी कोण सुधार ।।२४३।।
परबाहरो काम चुकायो, सींघा स्वामी पे कोई नहीं आयो ।
स्वामी मन सो परतीत पाई, कहा लो करु राम की बड़ाई ।।२४४।।

।।बिश्राम।।

रसना येक कहा लो बरणु, अस्तुत करत न आवे मोहे।
पाव गुण को पार ने लहुँ, जो रसना रोम रोम होय ॥२४५॥
रोम रोम रसना होय, तोउ येक नहीं आव।
निरगुण के गुण आपार, खेम कहा लो गावे ॥२४६॥

षेम कहा लो गावई, अवर कहा लो जपिये जाप।
धरा अमर तीन लोक मो, सब ही दीसे गरगाप ॥२४७॥
षेम कहे धरा अमर, लो पुरी रह्यो।
जाके नाव ने जाप, सदा संगो जन से रहै आठु पहर गरगाप ॥२४८॥

दिना दुसरे संन्यासी आये, सींघा स्वामी के दरसन पाये।
धन धन साधु जन को सभाव, भली बुरी मन मो नहीं ल्यावे ॥२४९॥
कहे सींघा सुणे गुसाई, हम हैं सेवक तुम हो सांई।
कोउ करे दाव काई करे उपाव, प्रेम भगत बीरला जन पावे ॥२५०॥
येक ब्रह्म जाकी सगरी साषा, जाके घट जैसो त्यो तेसो रस चाषे।
साषी सबदी सीषे और गावे, नीरगुण सबद बिरला जन पावे ॥२५१॥
जाही सबद की मांड मंडी सारी, जीमी आसमान पुरस ओ नारी।
जा मो जिया जोन और चारो षाणी, चंद सुरज और पवन ही पाणी ॥२५२॥
बावन अच्छर और नव आष, सोही सबद में गुर और सीष।
पीड़ी पंनाली छत्तर और धाम, बरण बीवरण पुरीया राम ॥२५३॥
कहे सींघा हम कुं असी भासे, तुम बड़े महन्त कहा कहु तुमसे ॥
हुं हे बालक कहा कही जाणु, तुम आगे हउ केतोक सीयाणु ॥२५४॥
येह स्वामी सीतल मंत परकासी, तब अपणे आसण चल्यो संन्यासी।
सींघा स्वामी बहुत अस्तुत कीन्ही, भवत बड़ा भागवान कुं दीन्हो ॥२५५॥
कहे अतीत तुम आसण बैठाई, तुम हो हमारे बड़े जेठे भाई।
स्वामी मान्यो बहोत उसराय, गुरु मनरंग को फुरयो परताप ॥२५६॥
ता पीछे स्वामी पीपले आयो, नगर लोक बहुत सुख पायो।
स्वामी अपणे आसण बैठो जाई, करे भगती येक चिताई ॥२५७॥

नगरी थे उत्तर दिसा येक षाली, तीहां स्वामी आपणे अंग पषाली ।
पुरबं दीसा बहै ताको पाणी "बाण गंगा" नाव तास को ठाणो ॥२५८॥
तामो स्वामी अंस आपणो धरही, पाप ताप सबही हरही ।
नगर लोग है सारथ करही ॥२५९॥
स्वामी चले समता भाव, द्रोस्टी लोग पार नहीं पावे ।
सींघो गवली भुलो फीरे, नीकास की षाली मो अस्तान वों करे ॥२६०॥
तब स्वामी गद गद हासे, मन हमारो तीरथ ये ही बसै ।
हम आलसी नहीं जावा दुरी, हमारो तीरथ यो ही हजुर ॥२६१॥
जाके अंत दुबधा ने होई, ताकी तीरथ बसे सब याही ।
सदा संतोसी सादु जन, सकल उर मा रही जाके मन ॥२६२॥
ताके पीछे सब कछू पावे, सींघा स्वामी बोले सत भाव ।
स्वामी धरयो तीहां अपणे अंस, बाण गंगा कही बोल्या हुंलास ॥२६३॥
यामु जे नर करसी अस्नान, होसी मुगत प्रेम निधान ।
वाचा मनसा से अस्नान जे करे, रोग पीड़ा सकल पर हरे ॥२६४॥
सींघा स्वामी असो भयो, जुग जुग नाम अचल रह्यो ॥२६५॥
कुंभावंत परचरी भाषीं, दयाल सुत दीन्ही साषी ।
संत मंहत जी उपहेले कीन्ही, सोई गैल सींघाजी चीन्ही ॥२६६॥
सुमरयो राम कियो संघाती, मनरंग को सिष जगंनाथ को नाती ।
सींघा स्वामी सुरात न कीन्हो, राम दल मो मस्तक दीन्हो ॥२६७॥

॥विश्राम॥

सनमुष धस्यो राम दल मु, अनहद कमाण चड़ाय ।
ग्यान घोड़ा गैब का, पाचो मारया ठाय ॥२६८॥
ता पीछे स्वामी कु दल आयो, दोनों गांव रास बणाये ।
कीन्हु मंडाण दोनों ठाई, फेरयो दल जो साद बुलाई ॥२६९॥
येक बार और येक ही तीथ, रचो रास अती जुगत ।
दोनो ठाव से दल आयो, स्वामी मन मो आनंद पायो ॥२७०॥

लाग्यो दल सो करे विचार, न जाणु स्वामी कीत हु सिधारे।
येक येक को मुष चावे, करे विचार मन के माहे ॥२७१॥
स्वामी समजे मन माही, दीन्हों उत्तर दोनों के ताई।
तुम जाय आपणो काम सीधारो, अबकी आवण न बणे हमारो ॥२७२॥
दोनो घर काम येक दीन्हा, येक के इहां जाउँ तो उपजे भीन।
सेवक कहे असी नहीं कीजे, ये ही पगल्या वाही लग दीजे ॥२७३॥
देवो दरसन तो आनंद होई, कर जोड़ी और लागे पाई।
कहे स्वामी तुम जाओ घरे, अंतरजामी सकल सीधारे ॥२७४॥
मनसा सुद से कीजो काम, होसी परसन तब श्रीराम।
तब ही सेवक आपणे घर जाई, स्वामी अपणे आसण रहाई ॥२७५॥
वे जाय लागे आपणे काम, स्वामी सुमरे तब श्री राम।
भगत वछल भगत हितकारी, जीहां जीहां प्रभु कारज सारे ॥२७६॥
थुल सुक्षम देह जो धरी, सकल घट जोत प्रगासी।
मरम तिहारो कोई नहीं पावे, अकलंत ब्रह्म कलत नहीं आवे ॥२७७॥
असी अस्तुत स्वामी करे, तुम बिन कारज कोण सिधारे।
तब अंतरगत प्रगटे हरी, अनेक लीला साद की करी ॥२७८॥
स्वामी धर्यो निज ध्यान तब कृपा करी श्री भगवान।
येक कला रही घर मांही, दुजी प्रगटी दोनों ठाई ॥२७९॥
रास रमै स्वामी गयो, सभा सारी षु दरसन भयो।
बहोत सनुंमान स्वामी कुं दीन्हो, सीस नवाय डंडवत्त जो कीन्हौ ॥२८०॥
ले नीर चरण पषारे, सभा सारी भई षुस्याल।
धन धन स्वामी पावन कीन्हा, हम षु आये कर दरसन दीन्हा ॥२८१॥
स्वामी कहै धन तुम्हारो भाव, जो जेसो ब्रछ ते तैसो फल लागे।
जे नर वाचा मनसा करी ध्यावे, साची सेवा नीरफल नहीं जावे ॥२८२॥
लम्बा विछावणा पटसाल मा कीन्हां, तिहा लई स्वामी कुं बैठाया।
चरचा करत बीती अध रात, पहेर चवथे बरत्यो परसाद ॥२८३॥

सब मिल कर चरचा कीन्ही, करता की गत कोई न चीन्ही।
ले परसाद स्वामी लोपी देही, सभा सारी परयो संदेह ॥२८४॥
रही भरमी सभा सारी, उची नीची द्रस्टी निहारी।
राम कियो सकरे कलपांत, कीयो कोई स्वामी से उतपात ॥२८५॥
सभा कहे हम बोल्या नहीं कोई, जुट कवां तो राम दुहाई।
दोनों ठवड़ बात असी भई, स्वामी की गत न बुजे कोई ॥२८६॥
दो दो जणे दुउण कु जाई, कछु चले कछु दवराई।
करी प्रनाम और लागे पाई ॥२८७॥
कहे सेवक स्वामी तुम कहां कीन्हो, बीसवासघात हम ही कुं दीन्हो।
ईतनी बात कहेत है जब लग, दुजी ठवड़ तें आयो तब लग ॥२८८॥
दोउ दल की कीन्ही बाता, अचंभी रह्यो सबरो साथ।
कहे सेवक स्वामी हमारे आये, घर के लोग भेद नहीं पाये ॥२८९॥
रेन सारी सुमरन कीयो, तब जाय तुम कुं दरसन दीयो।
आये लेण सो अचंबी रहे, पलोटे पाव स्वामी के गहे ॥२९०॥
हम अपरादी कछुव नहीं जाणे, चाम द्रस्ट कहा पहेचाणे।
तब स्वामी वचन उचरे, दीयो दरसन देव मुरार ॥२९२॥
कहै स्वामी जणी करो बड़ाई, दियो दरसण श्री रघुराई।
ठाकुर तुम्हारो प्रगस्यो आजु, कीन्ही कृपा सारो काजु ॥२९३॥
॥विश्राम॥

कारण स्वारण जगदीस हे, कई कला कई भेक।
गोप लीला नटवर कला, छेदे पाप अनेक ॥२९४॥
पातक षंडण दुष वे हंड़ण, असुर नीकंदन जेह।
घट मट भीतर रमी रह्या, तास कोई विरला लेह ॥२३५॥

असा परचा भया अपार, स्वामी कु न बुजे संसार।
घर बाहेर के मर्म न बुजे, चामर द्रस्ट कुं भगत ने सुझे ॥२९६॥
ब्रह्म गीन्यान को न पावे भेद, अजर सबद जो कली जो छेद!
माया सरुपी सीरगुण कु ध्यावे, अकल ब्रह्म कलीत नहीं आवे ॥२९७॥

स्वामी की बात कोई नही मानऽ, भास नहीं जो ब्रह्म गीनान ।
स्वामी की गत कोई नहीं जाणी, आधे संसार षेचरी ठाणी ॥२६८॥
स्वामी प्रतीच्छण जाने संसार, स्वामी भयो कली क्रस्न अवतार ।
पाव पदम झलके माल, गोरो गात मूरत बिसाल ॥२६६॥
निस वासुर हरी गुण से राच निकसे सबद मुख से राम ही राम ।
निकसे सबद सोना सत नही होई, अदाग वाणी सब घट माही ॥३००॥
येक समै स्वामी मरण विचारयो, अभै पद परसण कु मन धारयो ।
जाय मिले अपणे परिवार, तजि माया मोह संसार ॥३०१॥
जन सींघाजी अैसी उचरे, पात्र पहेले मालुम करे ।
तब लो मनरंग कहे पठायो, सरावण सुदी जो छुटे देह ॥३०२॥
पुरन मासी का दिन नीकसे गात, कहे पठायो सीष के हात ।
सींघा स्वामी मालुम कीन्ही, आण पत्र का गुरु की दीन्ही ॥३०३॥
गुरु के पास से संदेसो आयो, सींघा स्वामी आनंद पायो ।
गुरु को सबद मानी लीन्हो, सीस नवाई डंडवत कीन्ही ॥३०४॥
गुरु को सबद मानी लीजे, पुरणमासी पहेले कारज कीजे ।
सरावन सुदी नवमी सार, ता दिन स्वामी कियो विचार ॥३०५॥
स्वामी बैठो आसण वाल, हिरदे सुमरे गुण गोपाल ।
अमृत वाणी मुष ते उचरे, प्रेम भगत अति आनन्द करे ॥३०६॥
ताल पषावद जांजर जोड़, स्वामी बैठो आसन जोड़ ।
उत्तर दिसा मुख जो कीन्हो, मंदर माही आसंण कीन्हो ॥३०७॥
बैठो स्वामी दोई कर जोड़ जीभि नाड़ी ठवड़ की ठवड़ ।
सगुरा निगुरा बैठे सब कोई, स्वामी कला मालुम होई ॥३०८॥
पड़े न मालुम कोई काजे, स्वामी न छोड़े देही आज ।
भयो स्वामी अंतर ध्यानी नीकसी जोत जोत में समाणी ॥३०६॥
रोवे कुठम कवीलो घर नार, सिष साषां अति अपार ।
नगर लोग बहोत पसतावे, करे कीलगात विलषी रोवे ॥३१०॥

रोवे नारी पटके सीस, तु केंउ रूठो श्री जगदीस।
नान्हा बालक नान्हु सात, रोवे नारी करे कलपात ॥३११॥
कालू भोलू चारई सुत, संदु दीपो नान्हा सुत।
येसो कही कही रोंबे परनार, कवन गत भई करतार ॥३१२॥
डुल मुल डुल मुल नारायण रोवे, कीसना बाई के आसु नहीं आवे।
रंगु वहेणी काका की बेटी, सोई सीस पटके लट छुटी ॥३१३॥
करुणा करि करि रोवे सब कोई, धीरज न धरे अर कायेर पड़े।
स्वामी परसे पद निरवांण, चवथे पद पोहचो निरबांण ॥३१४॥
मुगत परापत स्वामी भयो, सहेज सुंन पहंतो थयो।
अवचल पद पोहंचो दास, जीहां जीवन पद अती सुषरास ॥३१५॥
॥विश्राम॥

जीवण पद जहां सुष घणो, करता बिसंमर जेहा।
अगम जहां गम करे, स्वामी भयो ब्रिदेहे ॥३१६॥

सींघा स्वामी नाषी देह, छाड़ी माया सकल संनेह।
पोंहचे स्वामी अमरा पद, जहां, रही काया भुमंडल जीहां ॥३१७॥
नगर मूंधी परगणो पीपल्यो गांऊ, छोड़ी स्वामी देह तनि ठांउ।
पुरब दिसा दीन्ही संमादु, तिहां मिले संतो अर सादु ॥३१८॥
गावत बजावत ले जाई, चोबा चन्दन चरचे सोई।
दीन्ही संमाद तीनी ठाही, कर जोड़ी के लगे पाई ॥३१९॥
स्वामी काज जो दीन्ही संमाद कीन्ही विनंती सगरे साद।
पद परापत भयो स्वामी, सकल सीध कारज सारो अंतरजामी ॥३२०॥
येसो कही सब घर जावे, स्वामी के गुण कोई नहीं पावे।
येक बात बसी सबके चित, स्वामी ठाट सो कीजै तीय ॥३२१॥
कीजे सरद समे को मेलो, येउ भाषे नारायण चेलो।
गुरु के सबद मेठो जणी काई, कीजे मेलो परमारथ होई ॥३२२॥
जाको बरत सोई निभावे, स्वामी को सबद षाली जणी जावे।
येसो सबद सब मिल भाषे, सबरो भार स्वामी पर नाखे ॥३२३॥

ता पीछे येक अचीरज भयो, येक "ब्राह्म" कु दरसन दियो।
मास तीन बीत्या सांई, ता पीछे बात येसी भई ॥३२४॥
ब्राह्मण काज दरसण दीन्हों, देषी ब्राह्मण अचंभो कीन्हो।
ब्राह्मण मन मो अचंभी रह्यो, देषि दीदार कछु ने कह्यो ॥३२५॥
तुही ब्राह्मण महेकी चार, करे चहुल चारु दिसा पुकारे।
चड़ीयो सूर घड़ी येक दोय, स्वामी संग बतावण कहे ॥३२६॥
बुजी स्वामी सबकी कुशलात, हसि हसि ब्रांह्मन करे बांत।
स्वामी काज बुजण की करे, भुलो विप्र उघठ नहीं पड़े ॥३२७॥
गयेबी सबद उठो तिनी ठाई, उलटि ब्राह्मण पाछो चाही।
तो लो स्वामी लोपी देह, ब्रांह्मण मन मो अंचभी रह्यो ॥३२८॥
गेबी पुरस गेब समांणो, ब्राह्मण मन मो बहोत पसतानो।
हउ अपराधी मत को हीणो, गयेबी पुरस को नहीं पहीचाणो ॥३२९॥
करे करुणा अधिक अपारा, हउ निगुरा नहीं जाणी सारे।
मेरी मत साहेब भुलाई, नातर हुंउ लगतो पाई ॥३३०॥
गयो विप्र नगर के माही, छांड़ी महेकी जहां की ताही।
गांव पटेल सु जाये सुणायो, साद को दरसन मोही कु भयो ॥३३१॥
कवण साद दरसों आज, साची कहो हमारे काज।
सींघा स्वामी पिपल्या वालो, नीमाड़ षंड जाको अधिकारो ॥३३२॥
लोक कहै बात कब की होई, सींघा स्वामी छोड़ी देही।
मास तीन ताकु गुजरी गया, तुमकु दरसन कब भया ॥३३३॥
कहे ब्राह्मण अब की घड़ी, सिर पर चादर हात लाकड़ी।
घड़ी दुई लो चरचा करी, भयो दरसण पर बुध बीसारी ॥३३४॥
स्वामी सनमुष चरचा करी, तेउ तेउ मोही हियो उमगे भारी।
स्वामी सनमुष ठाड़ो आप, मो मुष निकसे ने जु आप ॥३३५॥
कहुं बात ते सांची मानो, स्वामी के तेज हउ षरो लुभाणो।
कहेब्रांह्मणहंउरमतो स्वामी की सात, कही नहीं जाये आज की बात ॥३३६॥

आज की कला कही नहीं जाई, जानो सूर रह्यो बदल पर छाई ।
कहे ब्राह्मण अयसी बांत, बताउं ठाव जो चलो सात ॥३३७॥
धन धन यो ब्रांह्मण को जोग, लई परसाद चल्या लोग ।
नगर लोग ल्यायो परसाद, जहां विप्र कुं दरस्यो साद ॥३३८॥
देष्या पगल्या तहे तत्काल, करे प्रकर्मा तेही काल ।
कहे ब्राह्मण हमसे चरचा करी, सनमुष ठाड़ो हंउ दोई घड़ी ॥३३९॥
बहोरी लगो ब्रांह्मण के पाई, धन धन जनम सुफल तोही ।
चरचा करी बरत्यो परसाद, करे लुटांगण जहां ठाड़ो साद ॥३४०॥
॥विश्राम॥

करे लुटांगण प्रीत से, रुचि रुचि वर्त्त प्रसाद ।
साद की सरभर को करे, जीनका मता अगाध ॥३४१॥

जब से ब्राह्मणकु दरसन भयो, लागो लक्ष जो गुरमुष भयो ।
भयो ब्राह्मण गुर मुख सोई, बोले बाणी जो निर्गुण कही ॥३४२॥
सो चरचा चली पीपले आई, भयो दरसंन येक ब्रांह्मण के ताई ।
"स्याम विप्र" तास को नाम, भयों दरसन जहा "छीरवो" गांव ॥३४३॥
अैसी बात जो आणी कही, कोई मानी कोई मानी नहीं ।
जुठो थो वो कोई उठायो, कांहा साद कीन्ने दरसन पायो ॥३४४॥
अपणी अपणी बात सब मिल ठाणी, उस पुरस की बात कीनी नहीं माणी ।
मात जसोदा सबद विचारे, अवर कोई ने बुजे सारे ॥३४५॥
येक अचंभो बहुरी भयो, भुलो बालक तीहा रह्यौ ।
रहो बालक स्वामी की समाद करे रछ्या स्वामी दे परसाद ॥३४६॥
बरस पांच को बालक षेले, रह्यो नीडर साद के मेले ।
मात तात ढुंडे अरु रोवे, गयो बालक कहां पावे ॥३४७॥
मात पिता कलपे अपार, बालक बिछोवो कीयों करतार ।
द्रष्ठ आगे सो जाये ते साई, तों ने दुष हमें लगतो कोई ॥३४८॥
ढुंडत ढुंडत दिन पांच जों भया, मुवो बालक सब कोई कहे ।
कहे लोग बालक तहीं पावे, बाल जीमावो ताके नाम ॥३४९॥

ये ही निमत भयो हे ताको, करता निमत लीषो हे वाको।
बालक काज पषवाड़ो बीतो, भयो अकला चरीत्र येक अणचीतो ।।३५०।।
मात पिता कहे याकी येसी भई, कोल्या कुतरा षायो सही।
षाले नाले डुडो सोही, बालक षेले साद की षोले ।।३५१।।
सामा दल कोई नहीं आवे, केसे सुध बालक की पावे।
सीस पछाड़ी वेसी रहे, दुष बीसरी नहेचंत भये ।।३५२।।
येक दिन स्वामी बालक से कही, तेरे मात पिता पें ले जाउ तोही।
कहे बालक होन जाउ तिहा, में बहोत सुष पायो छे ईहां ।।३५३।।
मेरे घर सदा रुषो षांड, घीव षीचड़ी सपने नही पाउ।
दुद दही कहां ते ल्याउ, षांड़ षोपरा यां ही षाण कुं पाउ ।।३५४।।
षारीक षोपरा अवर चबेणी, ये ही चीज जनम नहीं जानी।
मेरो मन ईहां सुष पायो, घर जांउ तो बहोत बिलषाई ।।३५५।।
कहे बहोर बालक बांत, जो जांउ स्वामी तुम चलो सात।
सुनी सबद स्वामी भयो षुसाल, धन धन ये करता के ष्याल ।।३५६।।
गद गद कंठ हसे स्वामी, येमे प्रगटो अंतरजामी।
स्वामी के मन में येसी भावे, लेई मिलाउ बालक के काज ।।३५७।।
पास बसे येक जो गांउ, बोरषेड़ा तास को नाउ।
ताकी गयेल माता निकसी, आणी बालक तीहां उभो करे ।।३५८।।
आणी बालक बाठ के सिरे, आगे माता आड़ी निसरे।
देषी लड़का चलत ठबकाणी मन की कायेर आप डराणी ।।३५६।।
माता माता कर बालक पुकारे, तब त्रिया के मन धीरज आवे।
पुत पुत कर उठाई लीयो, कहे बालक तु कहां रह्यो ।।३६०।।
करी निछावर चुमे मुष, अरे प्राणी तु पायो दुष।
करे रुदन कंठ से चापे, स्वामी सनमुष उभो आपे ।।३६१।।
कहे माई हम मुवो जाणो, बालक काज राम जी आणो।
कहे बालक हउ अति सुष पायो, अधिक लाड़ मोहे स्वामी लड़ायो ।।३६२।।

कोण हे स्वामी माता कहे, कोण हे नगर कहा वो रहे।
माता कु बालक कहे, देषो सनमुष स्वामी ठाड़ो भयो ।।३६३।।
लंबी धोती माथे चादर, पटा पावड़ी लकड़ी हात।
माता की द्रीष्ठ स्वामी नहीं आवे, स्वामी अपणे रुप छीपावे ।।३६४।।
माता प्रत मीले जो प्राणी, स्वामी भयो अंतरध्यांनी।
अंतरध्यानी स्वामी भयो, बाल बिछोवो मेलो कीयो ।।३६५।।
स्वामी षु जो जातो देषो, रोवे बालक अति बिलष्यो।
तब माता सुत कु समजावे, लीन्हो गोदी मारग लेवे ।।३६६।।
लई बालक घर कु गई, अति आनन्द होवे बड़ी बधाई।
येक अचरिज नगरी मा भयो, गयो लड़का दरजी का पायो ।।३६७।।
नगर लोग बुजन कु आवे, देषे दरसन ते अचंभो करे।
कह रे बालक तु कोण के इहा रह्यो, कहे बालक स्वामी के ईहा रहो ।।३६८।।
बुजे लोग से वही बात, कह रे बालक तु रहो कोण की साथ।
कहे बालक हउ रहो बाबा के पास, सींघा स्वामी कहीये तासो ।।३६९।।
घीव षीचड़ी मोहे जीमावे, करे क्रपा जो कंठ से लगावे।
दुद भात दही जीमावे, भात भात की चवेणी कहीये ।।३७०।।
पांणी मोहे नदी को पावे, घड़ी घड़ी भरी ते ल्यावे।
येसी व्रतंत जो बालक कहे, घड़ी येक छांड़ी नही जाये ।।३७१।।
स्वामी तो कहुँ जाय ने आवे, जे मांगु ते नेहेचे ल्यावे।
येसो सुष स्वामी दीन्हो, बालक काज चरंजी कीन्हो ।।३७२।।
।।विश्राम।।

स्वामी सदा सर सो रहे, राष्यो बालक सात।
भगत वछल रछ्यां करी, सो दीनो मस्तक पर हात ।।३७३।।

माथे हाथ बालक को दीयो, धन धन जुग में ताको जीयो।
जीन पर स्वामी कीन्ही दया तेही पुरस कुं दरसन भया ।।३७४।।
येक समे चमरा दरसन पायो, सो स्वामी की समाद तन आयो।
नीचे मस्तक से चली जाई, सींघा स्वामी लियो बुलाई ।।३७५।।

बहु मास स्वामी षु हुआ सही, ता पीछे बात येसी भई।
दवड़ी चमरा लागो पाई, जनम सुफल आज भयो मोही ॥३७६॥
अती आधीनता चमरा होई, मो पींउ प्राछत आज जाई।
पहेर येक लो चरचा करी, तो लो आगों पीछु द्रष्ट ने करी ॥३७७॥
चमरा कान उघट नहीं परे, बोले स्वामी येकई सार।
बहुरी स्वामी बोल्या बांणीं साद मत काहु नहीं जाणी ॥३७८॥
आड़े आसंण हमको सेवायो, कियो काम बिना फुरमायो।
जल को दाग हम ही ने ठाण्यो, इनहु कियो अपणो जाण्यो ॥३७९॥
कहीयो जाये तो संमाद खुदावे, बैठे आसण हम कु बैठावे।
चमरा कहे तुम ठाड़े रहीयो, ल्याउ बुलाये जो तुम ही कहीये ॥३८०॥
चमरा उठी पाउड़ चार जो गयो, तो लों स्वामी अलोप जों गयो।
देषे चमरा पाछे जाई, स्वामी की ही ठोवड़ ने दीसे कोई ॥३८१॥
सपनं तर सो स्वामी दियो, चमरा मन में अचंभी रहो।
ठाड़ो मन में करे विचार, कही बात ने माने संसार ॥३८२॥
हसत हसत चमरा घर गयो, सुकची सबद कामनी सु कह्यो।
जननी जसोदा सींगाजी की नार, कहु बात जो बीती मायेर ॥३८३॥
कहे चमरा सुणु सब सात, में स्वामी दरसे निजतंत।
पहेर येक लो कीन्ही बात, ताकी साष श्री रघुनाथ ॥३८४॥
दुजो सबद येसो कही, षोदी समांद मोहे कहाड़ो सही।
बैठो आसण मोही कुं दीजो, सबद हमारो मानी लीजो ॥३८५॥
चमरा की बात कोई नहीं मानी, हंम कु मति देन कहा जाणे।
हासी हासी मो बात बोहाई, चम्हरा की बात कोई नहीं मानी ॥३८६॥
आयो चमरा अपणे घरे, छानी बात मन मो करे।
येसी बात कहेबे की नहीं, मैं मेरी अपने हात गमाई ॥३८७॥
ता पीछे दीन दोये बीता, भयो सपनो येक अण चीता।
कोइ सुतो कोइ जागे, आयो स्वामी ते ही लंग ॥३८८॥

पहेल ही श्राण श्ररधंगी चेताई, ता पीछे सीष कु सुणाई ।
नाम नरायेण तास को होई, स्वामी श्रान ते चेतायो सोही ।।३८६।।
चम्हरा की बात केउ नहीं मानी, श्राप धापी भया श्रभिमानी ।
बहोत संदेसा हमारे श्राये, तुम्हारे मन कछु नहीं भाये ।।३६०।।
येसो कही स्वामी गयो, इनके मन मो संसो भयो ।
सुनी कथा श्रर मन पसताये, मन जाणे मन को घाव ।।३६१।।

।।विश्राम।।

संसो उपजो मन मो, स्वामी कहीयो सोये ।
श्रब के जो ने मानहे, ने जाणु क्या होय ।।३६२।।
दास नरायेण विचारीयो, साले सब के घाव ।
जो न मानहें श्रब के, तो तन परले कराये ।।३६३।।
श्रैसे करता भयो परभात, स्वामी को सबद लग्यों चीत ।
येते दिन की नहीं मानी बात, सब बाण लागे चित ।।३६४।।
स्वामी सबद मान्यो सही, करु बात जो स्वामी कही ।
कहे नरायेन माता से बात, करो मजकुर मिलि सब सात ।।३६५।।
श्राज स्वामी चीतायो मोही काज, संत सबद सुणाउ श्राज ।
कहे मात सुणो रे भाई, वे श्रंतरजामी सदा सुषदाई ।।३६६।।
उनको सबद मानी लीजे, जे कही सो नेहेचे कीजे ।
माता कहे साद की गत, कोई नहीं ताको चीन्ही ।।३६७।।
चम द्रस्ठी श्रपन कुं दीन्हीं, सेवक तो सेवा करि जाने ।
श्रकलंत ब्रंह्म कुं को पहेचाणे, सपने मो सरुप निरमल जोत ।।
कहेत न श्रावे ताको श्रंत ।।३६८।।
त्रलोचन का कीबी कंमाई, रहे समीप प्रेम तन लाई ।
जैसे वसुदेव देवकी भुलाई, बाल लीला बन बच्छ चराई ।।३६६।।
श्रैसे पुरस को मर्म ने पायो, पये पान दई जीन गोद षीलायो ।
पीछे पीछे सब पसतांने, जोगी जतो श्रर संत सयाने ।।४००।।

अवर गरीब की केती बात, रहे रामजी तिनकी साता।
येती बात माताजी कहेत्ता, दास नरायेन मानी सही ॥४०१॥
कही बात जो सब षु भाई, ततछण राज लीया बुलाई।
बादी संमाद सादुत्तणी, नीकस्या साबत देह ने षीणी ॥४०२॥
कहाड़ी देह ते बाहर ल्याया, सीतल जल अस्नान कराया।
छुटे मास देह निकासी, बढ़े केस नष रोमावली ॥४०३॥
नगर लोग देषण षु आया, गाव अनगाव की कोन चलावे।
धन धन कहे सब कोये, जो दरसन करे लागे पाव ॥४०४॥
छोटे मोटे मिले हजार, स्वामी पास जुड़ो दरबार।
तीसरे पहेर ले राष्यो सही, पहेर पीछले संमाद जो दई ॥४०५॥
असनान कराई आसन दीयो, चरण पषार चरणांमृत लीयो।
पहेले तो स्वामी षु आड़ा आसन दीन्हो, अब हो बैठो आसन
गंगा मुष दीन्हो ॥४०६॥
धन धन सब कोई कहे, सींघा स्वामी साबुत रहे।
जगत भगत बोले बड़ाई, धन धन जीनकी पुरण कमाई ॥४०७॥
नष सिक सब साबुत देही, बड़े पुरस जो राम सनेही।
भयो अधिक पोहो मे जैजैकार, अधिक मंगल अधिक उपचार ॥४०८॥
बहोत मंगल बहोत बधाई, जै जैकार करे सब कोई।
बरतो परसाद संत के पांई, करे प्रीत जो आनंद बड़ाई ॥४०९॥
करी जुगत जो समाद मो बैठायो, तापर गचबंध चबुत्रो बंधायो।
भीतर कोठाड़ी तसीया बंध, तहां सहेज सरूपी बैठो साद ॥४१०॥

॥विश्राम॥

सहेज सरुपी साद है, हरष सोक जीनके नाहे।
जीवते म्रत कहो रहे, सो पावे निर्भय ठाव ॥४१२॥
जोग जुगत आसन करे, पवन ग्रंस करे जेह।
भगत राहा न्यारी रही, पचि पचि हारे तेह ॥४१३॥

नागा मुनि डीगंमरा, माला मुद्रा बहुभेष ।
जीन परचे हरी मिले, सो अछर हे येक ।।४१४।।
जोगी जंगम से बड़ा, भुले भर्म अनेक ।
मुकत मुल हे अच्चरा, तास को कोई बिरला लहे ।।४१५।।
अगम अच्चर की गम नहीं, सकल माही प्रकास ।
बावन सर सोना व अंष मो, सबद सबद नीकास ।।४१६।।दोहरा।।
ता वीनवेन ने निसे, वेन विना सो ना हे ।
सचर पुर रह्यो, सो नारो कियो ने जाये ।।४१७।।
पुरब वास सरसो रहे, कहा चंपो कहा बेल ।
तेल फुल कहां बसे, मिलकर भयो फुलेल ।।४१७।।
सीप्र सायेर में रहे, येक सबद येक भाव ।
स्वांत बुंद बी येक हे, तामो अनेक जंमाव ।।४१८।।
बहोरी बात सोन सब कोई, प्रेम भगत बिन मुकतंन होई ।
प्रेम सनेही स्वामी भयो, जीवन पद अती सुष लह्यो ।।४१६।।
भयो स्वामी निज दास, देस म देस गई हे बास ।
आगे कथा कहां लग कहुं, कहेत कथा पार ने लहुं ।।४२०।।
भया परचा स्वामी कु अपार, कहु कथा ते बड़े बीस्तार ।
अलप कथा सींगाजी की कही, आग भगत जेसी भई ।।४२१।।
थोड़ी कथा सरस रस मीठो, हरि सुमेर जेही जन जेठो ।
मो पर कीरपा येती भई, अगनेत कथा जो कही ।।४२२।।
हउ छे मुढ़ मो मत ओछी बुध, अच्चर तणी ने जाणो सुध ।
सत गुर स्वामी क्रपा कर दीन्ही, बुध तो साष बिस्तरी ।।४१३।।
सबद येक मोही सुणावो, ताके परचे पद जो क्नावुं ।
कहे षेम सुनो जन लोई, सुरता वकता पद परताप होई ।।४२४।।
सींगा स्वामी की परचरी सुनाउ, सकल संत कु सीस नवाउं ।
बहोत परचा स्वामी कु भया, ता मो परसंग येक न कह्या ।।४२५।।
।।विश्राम।।

कुप जल जो पीवे, ने जाणा सायेर संत।
बीन जीव को डंड का, हरि गुण हे अपार ॥४२६॥
बीन जीव को डंड का, डर डर बोले बाणी।
प्रेम ताइ हीये नहीं, मानु पड़नै पषान ॥४२७॥

सींगा स्वामी की परचरी पुरी भई, जन परताप षेम जो कही।
सर अवसर ने जाणु सही, सतगुर संत जन आये सदई ॥४२८॥
मे मुरष थें कही ने पावो, चक्षु अंध मारग भुलायो।
सत गुर स्वामी कृपा कीन्ही, गीन्यांन लकड़ी हात मा दीन्ही ॥४२९॥
बहां पकड़ी कर पंथ बतायो, सगन घन सुधो मारग लायो।
बहोर बहोर येसी कवाई, आड़े बोले मंत भुलाई ॥४३०॥
सुधे मारग मोही लायो, बंद चवरासी से तुरत छुड़ायो।
मन मेरे तो येसी भावे, सत गुर बिना सब जोजक जावे ॥४३१॥
ससंत सतरासो अड़ताला जाणी, सतगुर बोल्या अमरत बाणी।
समदरसी होय दरसंन दीणा, चंदंन वारे से लेपन कीन्हा ॥४३२॥
गोरो गात जेसे केसर भीनो, सीतल सबद बोले जीनो।
मेरी सुद बुद सब हरी लीन्ही, पास बुलाये बात जो कीन्ही ॥४३३॥
भई बात जो सबही भाषी, स्वामी अपने अंत कछु नहीं राषी।
आद अंत सगरी कबाई ॥४३४॥
बहोर कहे कहे जीणी काहू, दरसण भयो तेरे भाग्यं।
सुणो बात तो हों चेताउं, सींघा स्वामी मेरो नांउ ॥४३५॥
येसो सबद स्वामी कही गयो, सो परसंग मेरे हीरदे रह्यो।
कही बात सो सब चित राषी, तासें परचरी सींघाजी की भाषी ॥४३६॥
सींघा स्वामी जसोदा नारी, बहु भजनीक राम की प्यारी।
नीमाड़ षंड मा स्वामी भयो, अति लव लीण राम गुण कह्यो ॥४३७॥

ईतनी पठ उत्तम लुक, तीजो बीज लिषान।
सो संमत मो बीज लीषां भयो, अति प्रेम निवास ॥४३८॥

संत घर सदा सोहाग हे, संत घर सदा उछाहे ।
दिन दिन मंगल आरती, पल पल प्रेम वड़ाये ॥४३६॥
संत महेमा अनंत हे, जीनकी हरि करे बषांन ।
षेम गीडोला येक जेउ, मंद मती अग्यान ॥४४०॥
संत जन पाहुणां जेउ मती आवे वार ।
सो मंदर वेकुंठ जणीये, मानो बसे मुरार ॥४४१॥
साद तीहां सांईया, साद तिहां सब देव ।
षेम वारी साद की, जामे बिद्भेव ॥४४२॥
ईति सींघाजी की परचरी संपुर्ण भई ।
जन परताप षेम जो कही ॥संमत् १७५१॥ हाल संमत १८७६॥
श्रावन वद् १ शुक्रवार॥ ता दिन लिषतव्यं गोबरधन ब्रांह्मण संपूर्ण समापता ॥ जथा प्रत्य लिषी मम दोसो न दीयते ॥

श्री राम राम राम राम राम राम राम ॥

श्री गणेशाय नमः

बाबा सींघाजी की बाणावले

—०—

बे मरजाद ते जीव की, मरजाद ते मन की।
सींघार ते सोभा को, निद्रा ते सुख की ॥१॥
जाग्रुति ते चित्त की, आव ते जीव की।
प्रलो ते तन को, बल ते हिम्मत को ॥२॥
बाणावलै ते सावत का, भागणा ते कायर का।
झूठ ते लोभ की, साच ते मुगत की ॥३॥
तपस्या ते फत्तर की, धीरज ते ब्रह्म की।
सुफेरा ते सूरज का, सत ते धीरज का ॥४॥
चपला ते पवन की, कला ते बुध की।
लावण ते मोह की, डुडुणां ते वै त्याग का ॥५॥
काण ते कोयले की, मिलऽ ते प्रीत को।
रुप ते माटी को, तेज ते नयेन को ॥६॥
बोज ते जमीन को, हलकाई ते आकास की।
तरणा ते पहेचाण का, डुबणा ते कहात का ॥७॥
अहार ते मन को, साढबण ते तन को।
इज्जत ते भलाई की, लज्जा ते सरम की ॥८॥
अस्त्री ते कामदेव की, भूख ते अगिनी की।
धरम ते दया को, लोभ ते पाप को ॥९॥
आस ते जीवण की, सासा ते रण की।
गरजना ते सेवक की, हरित्र ते फायदे का ॥१०॥

सोष्र ते जान का, स्वाद ते लालुच का ।
दौड़ ते जम की, खुदी ते माया की ॥११॥
देव देवी पूजरण स्वारथ का, नाद ते अनहद का ।
वरणा ते सोहंग की, रंग ते तत्व का ॥१२॥
उजाला ते उनमुनि का, झपकरण ते अरध चंद का ।
सुफेदी ते विवारण की, वेद तो सोहंग का ॥१३॥
पल ते स्वास उसास का देहधारी ते जीव आतमा ।
देह रहित ते परमात्मा, कर्त्ता ते परमात्मा ॥१४॥

अथ दोस—

दोस ते मद मास खाये का, दोस ते चोरी अन्याव करे का ।
दोस ते झूठ बोले का, दोस ते चुगली करे का ॥१५॥
दोस ते प्राई निन्दा करे का, दोस ते कु जबां बोले का ।
दोस ते जीव हनन करे का, दोस ते कु द्रष्ट देखे का ॥१६॥
दोस ते दगा किये का, दोस ते बैल बालदी किये का ।
दोस ते आत्मा कलपाये का, दोस ते जाफा लिये का ॥१७॥
दोस ते खोटा दिये का, दोस ते अउपगार किये का ।
दोस ते मेरी तेरी किये का, दोस ते अहंकार किये का ॥१८॥
दोस ते हतियार बाँधे का, दोस ते साख रहे का ।
दोस ते जगात कमाये का, दोस ते चेटक नाटक किये का ॥१९॥
दोस ते खोटा नाँव लिये का, दोस ते गौ गोहे हले का ।
दोस ते संत कु सताये का, दोस ब्रह्म अंस खाये का ॥२०॥
दोस ते सिव निर्माल खाये का, दोस ते अरण दोस्याख दोस लगाये का ।
मोठा दोस ते ब्रह्म षु छाड़, और देव सेवे का ॥२१॥

दोहा— सिंघा अयेसा दोस रहित, जे चलऽ ते नर उतरऽ पार ।
और डुब्या भवसागर कु, सिंघा कहे विचार ॥२२॥
सदगुरु ऐसा चाहिये जग में होय उजाव ।
दुनिया डूबी ब्रह्म में, ईस मरम खु पाव ॥२३॥

अथ आत्म ध्यान
सोहंग, बताव, उनमुनि लाव, अनहद, बजाव, हात न लाव ।।२४।।
चंद सूर दोउ बताव निरखऽ परखऽ भेद जो पावऽ
बंक नाल मु आवऽ जावऽ , किली दे उलटा चेड़ावऽ
जीहां टीका तहाँ साहेब बैठा हात न पाँव रूप न रेखा
टाडवा दुद जो उलटा धाव, पछम दिसा का एकवीस मण का
एकवीस ब्रह्मांड ।।२६।।
तीहाँ भवर-गुफा है, उप्रह मुढ़ अरध उरध उपर त्रवेणी
दुवादस चल संत ऐह जाणी , दस दरवाजा प्रगट बताव ।।२७।।
तीन दरवाजा गुपुत न पावा, अठरा भार बनास्पति रोमावली
खिण मा सुपेत खिण म कालो, सकल हाड़ प्रवत्त है सवालाख ।।२८।।
सत शब्द जो सींघा भाखे ।

दोहा—

मोख का मूल सांच, ये थी और न दूजा
ऊच नीच बीच पुरी रहा, नहीं सेवा नहीं पूजा ।।२६।।
मूल दुवार गणेश देवता, रंग पीला पाखड़ी (४) जाप ६००१।।
सवा धी कथा नेक ।
ब्रह्म देवता रंग लाल पाखड़ी (६) जाप ६००२।।
नाभ कमल विस्न देवता रंग नीला पाखड़ी (१०) जाप ६००३।।
हिरदे स्थानेक सिव देवता रंग कालो पाखड़ी (१२) जाप ६००४।।
कंठ स्थानेक जीव आत्मा देवता, रंग सुपेत पाखड़ी (१६) जाप
१०००५।।
नित प्रत आसमान सोहंग जिसषु रूप न रेखा ।
दुई दल कमल परमात्मा देवता जाप १०००६।।
सहस्य कमल दल गुरु देवता जाप १००००।।
जुमले जाप २१०००।।

मूल आकार बाहेर का रंग सुपेद बाहेर अगिण का रंग काला
बाहेर पवन का रंग नीला, बाहेर पाणी का रंग लाल
बाहेर जमी का रंग पीला ।
बाहर पथर हय, बाहर बनासपती हय,
बाहर नद्दी हय, बाहर प्रवत हय,
बाहेर जीमी हय, तामे पाणी की भिर हय,
अवर बाहेर पाठा हय, बाहेर बिजली हय,
बाहेर पवन हय, बाहेर नर हय, बाहेर नारी है।
बाहेर काल है, बाहेर गरजना है बाहेर तारा है,
बाहेर षट चक्र है, बाहेर मोती है बाहेर कत्ता पुरस है।

दोहरा

जैसी रचना बाहेर है तैसी रचना भीतर देख।
बाहेर भीतर एक है बहेकण दे अनेक।
तैसी देही जीमी है, यामे तो प्रवत चाहिये।
तो टोंगल्या कोहणी प्रवत है,
तो यामे भिर चाहिये, छार सब भीर है,
तो यामे पत्थर चाहिये तो दात हात पाठा है,
तो यामे पाठा चाहिये तो पासू सब पाठा है,
तो यामे चन्द्र सूरज चाहिये तो दोनों नयन चांद सूरज है,
तो यामे नद्दी चाहिये तो तीन गुण तीन नद है,
तो यामे बादल चाहिये तो भय भ्रम बादल है।
तो यामे बिजली चाहिये, उनमुनि मुजब के सोही बिजली है,
तो यामे एकवीस ब्रह्मांड चाहिये तो पच्छम दिसा का एकवीस
मणका एकवीस ब्रह्मांड है,
तो यामे आकास चाहिये शीस आकास है,
तो यामे गरजना चाहिये तो अनहद गरजना है,

तो यामे काल चाहिये, क्रोध काल है,
तो यामे षट चक्र चाहिये, षट कमल षट चक्र है,
तो यामे परमेश्वर चाहिये, तो सोहं परमेस्वर है,

दोहा—

बाहर भीतर जल मयी, अन्तर नहीं लगार
अपणे नयन आप खु देखे, न कछु पार न वार
सकल जीव एक करि देखो, ऊँच नीच दुई मत लेखो
भूख प्यास आत्मा जाणै, हरख सोक हिरदे नहीं आणे,
देव देवी की नहीं करे आसा, आठौ पहेर रहे उदासा
नर नारी क पुन कह भूट न बोल सत न छाड़े
घर घर न डोले, साप इच्छू आप समान।
जो तरणू होय तो, लोई ऐसी जांण।
अलप अहार घणा न खावे, तीसरे चौथे नद्दी तरफ जावे
जयसी अपणी तयसी पराई जाणे, लोभ मोह प्रहरो कणी करो
मुगत की हाण सोभा अहंकार निहचे डार
तो तरी रह्या साई क्या तारे,
लालुच लोभ सकल है फांसी, हुस्यारी करां नई तो होयगा हांसी।

॥ इति श्री सिंघाजी की बाणावलै समाप्त ॥

सिंगाजी के भजन

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझण हारा ।।टेक।।
खोजत ब्रह्म जलम सिराणा, मुनिजन पार न पाया,
खोजत खोजत शिवजी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा ।।१।।
शेष सहस्र मुख रटे निरन्तर, रैन दिवस एक सारा,
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तैंतीस कोटि पचिहारा ।।२।।
त्रिकुटी महल मऽ अनहृद बाजे, होत शब्द झनकारा,
सुकमणि सेज शून्य मऽ झूले, वो सोहं पुरुष हमारा ।।३।।
वेद कथे और कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा,
काम, क्रोध, मद, मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा ।।४।।
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा,
सिंगाजी न भर नजरा देख्या, वो वोही गुरु हमारा ।।५।।

●

खेती खेड़ो हरि नाम की, जा मऽ मुक्तो लाभ ।।टेक।।
पाप का पालवा कटावजो, काटी बाहर राळ,
कर्म की कासी एचावजो, खेती चोखी थाय ।।१।।
वास श्वास दो बैल हैं, सुरती रास लगाव,
प्रेम पिरहाणो कर धरो, ज्ञान आर लगाव ।।२।।
ओहंम् बक्खर जूपजो, सोहम् सरतो लगाव,
मूल मन्त्र बीज बोवजो, खेती लटलूम थाय ।।३।।
सत्त को मांडो रोपजो, धर्म पैड़ी लगाव,
ज्ञान का गोळा चलावजो, सूआ उड़ि उड़ि जाय ।।४।।
दया की दावण राळजो, बहुरी फेरा नहिं होय,
कहे सिंगा पहिचाण लेवो, आवागमन नहीं होय ।।५।।

●

संगी हमारा चंचला, कैसा हाथ जो आवे,
काम, क्रोध विख भरि रह्या, तासे दुख पावे ॥टेक॥
मट्टी केरा सीघड़ा, पवन रंग भरिया,
पाव पलक घड़ी थिर नहीं, बहु फेरा फिरिया ॥१॥
आया था हरि नाम को, सो तो नहीं रे बिसाया,
सौदा तो सच्चा नहीं, झूठा संग किया ॥२॥
घुरत नगारा शून्य में, ताकी सुध लीजे,
मोतीयन की वर्षा वरसे, कोई हरिजन भीजें ॥३॥
राह हमारी बारीक है, हाथी नहीं समाय,
सिंगाजी चींउटी हुई रह्या, निर्भय आवऽ नी जाय ॥४॥

●

मैं तो जाणूं साईं दूर है, मुझे पाया नेड़ा
रहणी रही समरथ भई, मुझे पखवा तेरा ॥टेक॥
तुम सोना हम गहणा, मुझे लागा टाका
तुम तो बोलो, हम देह धरि, बोले कई रंग भाखा ॥१॥
तुम चंदा हम चांदणी, रहणी उजियाला
तुम तो सूरज हम घामळा, सोई चौजुग पुरिया ॥२॥
तुम दरियाव हम मीन हैं, विश्वास का रहणा
देह गली माटी भई, तेरा तूही मऽ समाणां ॥३॥
तुम तरुवर हम पंछिड़ा, बैठे एक हि डाला
चोंच मार फल भाजिया, फल अमृत सारा ॥४॥
तुम तो वृक्ष हम बेलड़ी, मूल से लपटाना
कहें सिंगा पहिचाण ले, पहचाण ठिकाणा ॥५॥

●

मन निर्भय कैसा सोवे, जग में तेरा को है ॥टेक॥
काम क्रोध ये अति बल जोधा, अरे नर विख का बीज क्यों बोवे ॥१॥

पाँच रिपु तेरे संग चलत हैं, अरे वो जड़ा मूल से खोवे।
मात पिता ने जलम दिया है, अरे वो त्रिया संग न जावे ॥२॥
भरम भरम नर जलम गंवायो, अरे ये आई बाजू खऽ खोवे।
कहे जन सिंगा अगम की वाणी, अरे नर अन्त काल को रोवे ॥३॥

●

चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा, मन रे चढ़ी जा सोहंग सीधी धारा
मन मछुवा माया की जाल में, उलझ रह्यो संसारा
ढीमर जाल झकोळई न नाखे, ऊ जम काळ तुखऽ घेरऽ
मन दरियाव उमकऽ जल गहरा, और जल सब खारा
एक पुरुष की मांड रची है, ऊ छिटक रह्या है न्यारा ॥
ताल पखावज बाजे झांझरी, जानम राळया बिछौंणा
देखे कोई नाहीं दिखावे, अनऽ किस विध उतरूँ पारा
बंक नाल की सुधि पकड़ ली, त्रिकोटि संगम न्यारा
सुख मणि सास उसास भरत है, वाही म सिरजण हारा ॥
अलख में वारा पलख में पारा, पारा जग संसारा
वस्तु वचन पहिचान लेवो, ऊ कूद पड़े मझधारा
मन मछुवा मोह की जाल में, नदियाँ वहे जल सारा
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधू, ऊ भक्त उतरऽ न पारा ॥

●

आवागमन मत कीजो, प्रभु म्हारा फिरी जलम मति दीजो !
एक साहूकार अनेक बैपारी, नेकी का सौदा कीजो रे
रीत का खाना घर ही रहना, बेफारक मत हुजो रे।
खारा जो खाई खाई सब जग मरिया, मछली का मेणा मत कीजो रे
ओछा जलम तड़फे मछली, हाथ दोष मत लीजो रे ॥
तन काया का पलंग कीजो, मन की सेजां कीजो रे,
चाँद सूरज दोऊ तपे हिलोले, वहाँ जाई डेरा दीजो रे।

कहे जन सिंगा सुणो भाई साधु एतरी म्हारी सुणी लीजो रे,
अवंऽ को जाऊँ फिरी नहीं आऊँ, ज्ञान घोई घोई पीजो रे ॥

●

गुरु म्हारो वृथा जनम गयो, नहीं मुख राम कह्यो !
एक पण खोयो मनऽ, दूजो पण खोयो,
तीजा म शरण गयो ॥१॥
वन खंड माही, गऊ भैंस चराई,
जंगल वास कियो ॥२॥
गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु समाना,
नैननऽ नीर बह्यो ॥३॥
नैन खोल गुरु रूप निहारे, जब गद्‌गद कंठ भयो,
गोद उठाये श्री मनरंग मस्तक हाथ दियो ॥४॥
कहे जन सिंगा धन महिमा गुरु की,
मोहे भव जल पार कियो ॥५॥

●

मारया बाण कसी, सतगुरु मारया बाण कसी !
अन्न नहीं भावे नींद नहीं आवे, तन पर विपत कसी,
तन का घाव नजर नहीं आवे, कहाँ रे लगाऊँ दवा घसी।
छुरी नहीं मारी कटारी नहीं मारी, शब्द की भाल धसी,
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधू, मन रंग भाल धसी।

●

साचा साहब मेरा नाथ जी, मैं तो दुबाली वन तेरा ॥टेक॥
पांच हथियार जुगत करि बांधो, नव ठाकुर भव तेरा,
जम राय से लेऊँगा लड़ाई, सम्मुख लड़ूँगा अकेला ॥१॥
जीन लगाम उतरने न पावे, चलने न पावे घोड़ा,
सम्मुख रहूँगा धणी के सामने, पहला मुजरा मेरा ॥२॥

दवात मंगाले कलम मंगाले, पट्टा लिखवा ले घणेरा,
अमरापुर की जमीन लिखा ले, वैकुंठ का बसेरा ॥३॥
चुन चुन कनिका महल बनाया, दस दरवाजा गहरा,
काया गढ़ की करो रखवाली, लूटने न पावे डेरा ॥४॥
राम नाम की जहाज बनाले, काष्ठ भरियो बहु सारा,
कहे जन सिंगा सुणो भाई साधु, मनरंग उतरण हारा ॥५॥

ब्रह्मगीर के भजन

सोहंग बाळा हालरो नित निरमळो,
निरमळ थारी जोत, सोहंग बाळा हालरो ।
नदी सुकता का घाट पर, बैठयो ध्यान लगाय,
आवत देख्यो पींजरो, लियो कंठ लगाय ।
सप्त धातु को पींजरो, पाख्या तीन सौ साठ,
एक कड़ी हो जड़ाव की, वापर रचियो ठाट ।
आकाश भूलो बांधियो, लाग्या त्रिगुण डोर,
जुगत सी भूलणा भुलाविया, हींचऽ मनरंग मोर ।
नहीं रे बाळा तू सोवतो नहीं जागतो, बिन ब्याही को पूत
सदाशिव की शरण मऽ, भुलऽ बांझ को पूत ।
अरणहद घुघरूं बाजिया, अजपा का मेव,
अष्ट कमल दल खिली रह्या, जैसा सरवर मेव ।
सुखमण हिलमिल रहे, सोना सांकल दोर,
ब्रह्मगीर कहता हुआ, काया का हिंडोर ।

●

हम परदेशी पावणां, दो दिन का मेजवान ।
आखर चलना अन्त को, निरगुण घर जांणा ।
नांद से बिन्दु जमाइया, जैसा कुम्भ का काचा ।
काचा कुंभ न रहे, एक दिन होयगा विनासा ।
खाणां पीणा सो आपणां, दिया लिया सो लाभ ।
एक दिन अचरज होयगा, उठऽ लागोगे बाट ।
ब्रह्मगीर ब्रह्म ध्यान में, ब्रह्म ही कियो देवा ।
ब्रह्म ब्रह्म मिसरित भयो, करि ब्रह्म की सेवा ।

अन्त नी होय कोई आपणो।
समझी लेओ रे मना भाई, अन्त नी होय कोई आपणो।
आप निरंजन निरगुणा, सगुण तट ठाड़ा।
यही रे माया के फंद में, नर आण लुभाणा।
कोट कठिन गढ़ चैढ़णा, दूर है रे पयाला।
घड़ियाल बाजत पहेर का, दूर देश को जाणां।
कलजुग का है रैहणा, कोई सी भेद नी कैहणा।
झिलमिल झिलमिल देखना, मुख से शब्द को जपना।
भव सागर को तैर के, किस विधि पार उतरणा।
नाव बणी केवट नाहीं, अटकी रह्यो रे निदाना।
घुरत नगारा सुन्न में, बाजे अनहद तूरा।
तकिया है चौगान में, पहुँचे बिरला सूरा।
माया के भ्रम नहीं भूलणा, ठगी जासे निदाना।
ब्रह्मगीर कहते भये, पहिचाणो ठिकाणा।

दलुदास के भजन

आवलिया पीरा, गुरु बड़ा ज्ञान गंभीरा।
आप ही आप मिले जहाँ जाई, पूछे पूछे अजमत पाई,
दोनों का मिलिया मेल, मिले एक धारा॥
वन में बैठी दोनों मूरत, जहाँ बात ज्ञान की झड़ती,
अहो बणी रही सांवळई सूरत, मूरत लगे धीरा॥
सिंगा भागी दरसन पाये, सिंगा हमको तीरसा लागी,
अहो जल बिना तळफ रह्यो, यो प्राण धरत नहीं धीरा।
वन खंड झाड़ी बहुत उजाड़ी, यहाँ पाणी कहाँ पावो साई,
अहो तपी रह्या रहन उंढाळा, तपत अघोरा।
सत आनन्द के प्रेम भुजा पर, ज्ञान ध्यान का भरिया सागर,
अहो जिन पतित परचा दिया बताई, सूखी नदी बहायो नीरा।
बंदन खोल किया सब न्यारा, साई ने ज्ञान बकसा भारा,
अहो जिन मुरदा लिया जिलाई, खिलाई महेष की खीरा।
मुद्रिका डाली है कानों में, सतगुरु बैठे हैं लख ध्यानों में,
अहो जेको नांव धरयो भिकारयो, अनऽ उपज्यो हीरा रत्न की खांण।
स्यामगीर वो दला सिपाही, घोड़ा छोड़ मैजद दौड़ाई,
अहो जहाँ आचरित हुई वा सारी, थकित हुआ आमीरा।
आवघड़ आवघड़ ओ नर कहिये, कहियें नंगा भूका कबहू ना रहिये,
अहो जहाँ दलु पतित यों कहे, राख लो धीरा।

●

सिंगाजी भामगढ़ आया, सिंगाजी भामगढ़ आया,
जिन तजि घोड़ा घर धाया, सिंगाजी भामगढ़ आया।
लखा राव राना से कहिये, जिन सबहि साज धर दिया,

बहुत बिनती राजा कीन्ही, ओनऽ एक चित्त नहीं लाया ।
सस्ता मोह भंग कर डाले, जिनऽ नदी तवा मंडवाया,
जाय मिले जहाँ घर हरसूद, सब मिल दरसन पाया ।
माता बन्धु सब वरजन कीन्हो, जिनऽ मोह ममता बिसराया,
जाय मिले जहाँ गुरु मनरंग को, ओ आनन्द मंगल गाया ।
कहे जन दलू सुणो भाई साधू, ओ गुरु को शब्द चित लाया ॥

●

धन धन रे गवळई का पूत, बाबा संत उबारण लाग्यो रे,
बाबा कोण, पूरष का बालका, अणऽ कुण घर लियो अवतार रे
राजा भीम का बालका, अनऽ जिन गवळई घर लियो अवतारा रे
बाबा कोण माता को पय हो पिया, अनऽ किन्न दियो उपदेशा रे
बाबा माता गौरा को पय हो पिया, गुरु मनरंग दियो उपदेशा रे
बाबा दलु पतित की विनती, गुरु राखो चरण आधारा रे

●

गुरु महिमा धन जग माहीं, गुरु बिन धर्म और है नाहीं ।
भादव वदी अष्टमी आई, गुरु मनरंग कियो बिचारा रे ।
मनरंग बुद्धि उपाविया, ऊ गुरु सिंगा खऽ लियो बुलाई रे,
जद मनरंग को निंद्रा आई, गुरु सिंगा जीं खऽ बात सुणाई रे,
जलम होय तवं दीजो जगाई, भाई ई बात भुली मत जाजो रे,
जवंऽ हो सुवांगिया सुवांग लावे, नर नारी देखण आवे
रचियो हो रंग भीड़ भई भारी, हाथ पकड़ राधा नाची हो,
ताल पखावज बाजे झांझरी, निरभय भक्ति करो भाई,
करी आरती प्रसाद दई ऊ, गुरुजी खऽ नई जगाई रे,
चढ़ियो चन्द्रमा दो घड़ी चार, गुरु न सिंगाजी खऽ दियो हो श्राप,
दवड़ी लागिया गुरुजी का पांय, धन धन जन्म सुफल हुई जाय,
जावो सिंगा यहाँ से हट जाओ, हो मरिया मुख बताओ रे,
कहे मनरंग आगम की बात, मुक्ति को रहस्य हो मिटि जाय,

धन धन गुरु महाराज समरथ देव, जिन मुक्ति को मांड्यो सनेह ,
हाथ जोड़ि न करूँ अरदास, चौरासी मत दीजो फेरवास ,
हऊँ छे बालक आजब नदान, हिरदा मऽ मखऽ दीजो ज्ञान बताय,
ताल पखावज वाजे सैतार, जा दिन स्वामी न कियो हो विचार ,
मूंदी परगणो गाँव पीपल्यो, सिंगाजी खऽ मिली गयो ज्ञान रे
श्रावण सुद्दी नौमी सार, जा दिन स्वामी न कियो बिचार ,
कुटुम कबीला घर रोये नार, ढुलमुल रोवे सिंगाजी ,
कंचन थाल कपूर जले, सिंगाजी हरि से हेत धरे
दलु पतित की वीणती, गुरु गोविन्द सजीवन जड़ी

●

भजन है तीन लोक से बड़ा, भजन है तीन लोक से बड़ा ।
हांरे म्हारा सिर पर साहेब है खड़ा ।।
धरती माता कुं जर कहिये, आकाश सत पर खड़ा ।
भर भर प्याला दिया सत गुरु ने सोहम् सिखर गढ़ चढ़ा ।।
सिंगा स्वामी बड़े सक्स है, जाई ब्रह्मगीर से भिड़ा
कहे जन दलू सुणो भाई साधू , जिनका अटल झंडा गड़ा ।।

●

बाबा चलो संत पावो निधान, सिंगाजी थारा हरीनां बधावा हो ।
बाबा यो पल नहीं आवऽ पावणो, आसा बहु दल उतरे पार ।
तो मनख्या जलम दुर्लभ है, तुम मानो वचन नर नार ।।
जिन गुरु गोविंद से मिलिया, वो उतरे बहुदल पार ।
रामा, धन करणी हो सतगुरु की, जिन जीत लिया संसार ।।
बाबा दलू दास की वीणती, राखो चरण अधार ।।

●

सिंगा स्वामी आरजी सुणजो, कोई का दागदार मत कीजो ।
नर-नारायण देह दीवी है, गुरु ह्मारी पल-पल खबरा लीजो ।।
तीन पाव या तन खऽ दीजो, गुरु मखऽ अपणो करीन रखजो ।

भरी सभा मऽ साख राखोजो, गुरु मखऽ तन भरी बस्तर दीजो ।।
सुमरण भजन आरती पूजा, गुरु मखऽ भक्ति खेती दीजो ।
कहे जन दलु सुनो भाई साधु, गुरु म्हाही ऐसी सदा निभावजो ।।
कोई का दागदार मत कीजो ।

●

देवन का हो देव,
भक्ति दान मोहे दीजिये ।
करूँ सन्त की सेवा,
भक्ति दान मोहे दीजिये ।।
नहीं रे मांगूँ धन सम्पदा,
सुन्दर वर नारी ।
सपने में माँगूं नहीं,
मोहे आन तुम्हारी ।।भक्ति।।
तिरथ बरत मोसे न बने,
कछू सेवा न पूजा ।
पतित ठाड़ो परभात से,
अरु देव न दूजा ।।भक्ति।।
करम से रिध-सिद्ध घणा,
वैकुण्ठ निवासा,
किंचित मांगूँ नहीं
जब लग तन स्वासा
भक्ति दान मोहे दीजिये ।।

●

दया करो म्हारा नाथ,
हऊँ तो गरीब जन एकलो ।।
अठारही भार बनस्पति
फूले डाल मऽ डाल

वाही मऽ चन्दन एकलो
जाकी परमळ वास ॥ १ ॥
कई लाख तारा झरमळे
गगन असमान बीच,
वाही मऽ चन्दा एकलो
जाकी निर्मळ जोत ॥ हऊं तो ॥
अन हो चुंगता चुँगी रह्या
पंछी पङ्ख पसार
वाही मऽ हंसा एकलो
मोती चुग चुग खाय ॥ हऊं तो ॥
जन दलु की हो बीणती
साहब सुणी लीजो
मिलजो ते पड़दा खोलके
अपणों करी लीजो
हऊं तो गरीब जन एकलो ॥

●

सिंगाजी संदेशो आयो, सतगुरु ने हुकुम फरमायो ॥
गुरु का वचनं मिथ्या करी माने, हरे वो अब लग देह बचायो ॥
श्रावण सुदी पूनम को देह छोड़ो, हरे वो गुरु ने लिखि पहुँचायो ॥
गुरु आज्ञा सो पहेलऽ कीना, हरे वो नौमी को मंगल गायो ॥
संत मंडली हरि गुण गाये, हरे वो कपूर जोत जलायो ॥
कहे जन दल्लू सुणो भाई साधू, हरे ओ गुरु आप पछतायो ॥

●

सत गुरु बाबाकी, भली बणी हो समाधि,
इत उंकार, उत उंकार सदाशिव, दोने का दरबारो।
मूंदी परगणो, आयो निघा मंऽ, खड़ा किया निशाण हो ॥

चार खम्ब ना देऊल विराजे, ऊपर छतरी साजे।
छतरी ऊपर लगी चांदणी, ऊपर कलश विराजे हो॥
पयड़ी पयड़ी पदम् चढ़्या, हीरा न परगासे।
मोतियन की तो वरखा बरसे, बरण्या सरूप विराजे हो॥
झांगड़ झागड़ नौबत बाजे, आप अवलिया गाजे।
चार खूट में डंका बाजे, दुहिरा नौबत बाजे हो॥
दला साद का भला सिपाही, महेर गुरु की होई।
कुवजा माला लिवि हाथ में, साधू सन्मुख आवे हो॥

●

हारी तुम जोवो रे सांवलिया प्रभु नी आरती।
तिरी भुवन से रमती आरती वैकुंठ पुरी मऽ आई॥
कृष्ण न रुखमणी जी मिलिया, लई केशर बधाया॥
वैकुंठ पुरी से रमती आरती, ब्रह्म पुरी मऽ आई।
ब्रह्मा न सावित्री मिलिया, लई चन्दन बधाया॥
ब्रह्म पुरी से रमती आरती, शिवपुरी मऽ आई।
शिवशंकर गवरा जी मिलिया, लई भभूत रमाया॥
शिवपुरी से रमती आरती, इन्द्रपुरी मऽ आई।
इन्द्र न इन्द्राणी मिलिया, लई कळश बधाया॥
इन्द्र पुरी से रमती आरती मृत्युलोक मऽ आई।
मृत्यु लोक मऽ गुरु सिंगा मिलिया, लई कपूर बधाई॥